खुली धूप में नाव पर

रवीन्द्रनाथ त्यागी

प्रकाशक व विक्रेता
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद

मुद्रक
लीडर प्रेस
इलाहाबाद

मुखपृष्ठ
सोना घोषाल

मूल्य

वाचस्पति पाठक को

अनुक्रम

●

नोट

इस पुस्तक के प्रकाशन में श्री दिनेश जी ने मेरी काफ़ी मदद की है जिसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ। सुरेन्द्रपाल जी ने सारे निबंधों को पढ़ा है और स्थान-स्थान पर अनेक सुझाव दिए है, जिसके लिए मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ। नरवीर जी, राजवेदी जी व शारदा त्यागी ने पुस्तक छपने के संबंध में मेरी अनेक प्रकार से सहायता की है और उसके लिए मैं उनके प्रति आभारी हूँ।

पाठकों की सुविधा के लिए यह बताना मैं जरूरी समझता हूँ कि इन निबंधों के सारे पात्र काल्पनिक हैं और उनका किसी जीवित या अजीवित व्यक्ति से कोई संबंध नहीं है।

—रवीन्द्रनाथ त्यागी

खुली धूप में नाव पर
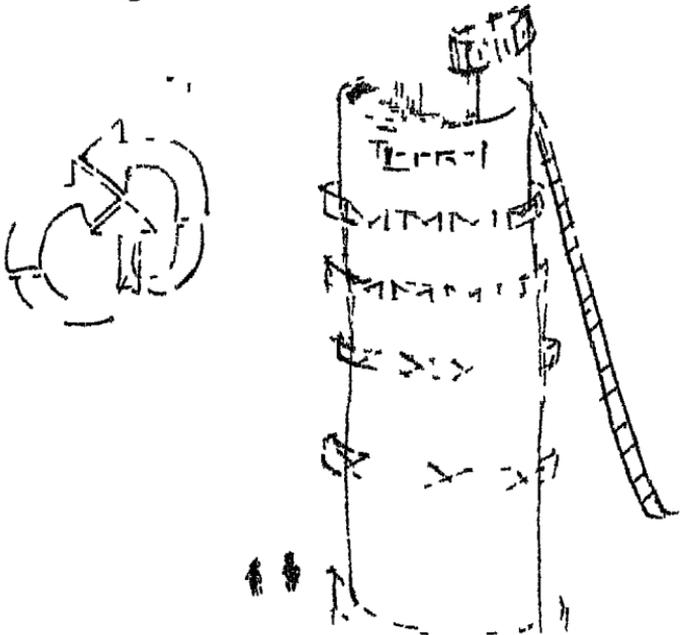
समर्पण के लिए आवेदन

नोटीफ़िकेशन

नीचे लिखे व्यक्ति को एक ऐसे सज्जन की तलाश है जिसे वे अपनी आगामी पुस्तकें समर्पित कर सकें। सही व्यक्ति का चुनाव करने के लिए सभी उम्मीदवारों से यह प्रार्थना की जाती है कि वे नीचे लगे आवेदन-पत्र को भर कर नीचे लिखे पते पर भेजने की कृपा करें।

ह०
रवीन्द्रनाथ त्यागी
कुमारी [illegible]
. . . .

आवेदन-पत्र भरने के लिए सूचनाएँ

१—फ़ार्म के साथ पाँच रुपये आने आवश्यक हैं। रुपये चैक, मनी-आर्डर, पोस्टल आर्डर, ट्रेज़री चालान व प्राइज़-वाण्ड के रूप में भेजे जा सकते हैं। इस धनराशि का हस्तांतरण ऊपर लिखे व्यक्ति को प्रत्यक्ष रूप से भी किया जा सकता है।

२—आवेदन-पत्र सभी प्रकार के लोग भेज सकते हैं। यह ज़रूरी नहीं है कि साहित्यिक कृतियाँ किसी साहित्यप्रेमी या साहित्यकार को ही समर्पित की जायँ।

३—यदि आप साहित्यिक हैं तो फोटो भेजना आवश्यक नहीं है। सारे साहित्यिक देखने में प्राय: एक-से ही लगते हैं।

४—उम्मीदवार के चुनाव में ऊपर लिखे व्यक्ति का निर्णय ही अंतिम माना जायेगा। कानूनी कार्रवाई सिर्फ प्रयाग की अदालतों से होगी।

५—क्योंकि पुस्तकें केवल समर्पण की ही वजह से छपने से रुकी हैं, फार्म जल्दी-से-जल्दी भेजने की कृपा करें।. . .अक्टूबर. . . के बाद भेजे फार्म स्वीकार न किये जायेंगे।

आवेदन-पत्र

आवेदक लोग नीचे लिखी सूचनाएँ अपने ही हाथ से लिखें। लिखावट साफ और रोशनाई में होनी चाहिए। यदि किसी कालम में सूचना नहीं दी जा सकती तो वह काट देनी चाहिये। अस्पष्ट रूप से भरे गये फ़ार्मों पर विचार न किया जायेगा और न फ़ीस ही लौटाई जायेगी।

१—नाम

कुछ लोग लड़कियों के नाम से रचनाएँ छपाते हैं, वे अपने असली नाम ही यहाँ लिखें।

२—उपनाम

३—स्त्री या पुरुष

(अ) क्योंकि आजकल नाम व फ़ोटो से सेक्स का पता ठीक-ठीक नहीं लगता, यह सूचना अलग से पूछी जा रही है।

(ब) कुछ लोग स्त्री होने पर पुरुष की भाँति और पुरुष होने पर स्त्री की भाँति आचरण करते हैं। इन लोगों से निवेदन है कि अपना सही विवरण ही यहाँ दें।

४—आयु

(अ) हाईस्कूल सर्टिफ़िकेट साथ आना जरूरी है।

(ब) कुछ लोग बड़ी आयु होने पर भी बच्चों की तरह मनोवृत्ति रखते हैं, ऐसे सज्जनों को उचित है कि सही आयु ही लिखें।

५—पेशा

६—योग्यता

(अ) हिन्दी के अतिरिक्त कौन-कौन-सी भाषाएँ जानते हैं ?

(ब) अपर मिडिल व हायर सेकेण्ड्री के अतिरिक्त कौन-कौन-सी परीक्षाएँ पास की हैं ?

(स) रामचरित मानस व गोदान के अतिरिक्त कौन-कौन-सी पुस्तकें पढ़ी है ?

७—क्षमता

(अ) क्या मुझे किसी रेडियो-स्टेशन पर नियमित रूप से प्रोग्राम दिला सकते हैं ?

(ब) क्या किसी प्रमुख पत्रिका में मेरी रचनाएँ छपवाने का प्रबंध कर सकते हैं ?

(स) क्या मेरी पुस्तकें पाठ्य-पुस्तकों के रूप में स्वीकृत करा सकते हैं ?

(द) क्या उन पर कोई सरकारी, गैर सरकारी इनाम दिलवा सकते हैं ?

(क) क्या किसी सांस्कृतिक या साहित्यिक डेलीगेशन में मुझे शामिल कर विदेश भिजवा सकते हैं ?

(ख) दूसरों के सामने कितनी देर गम्भीर मुद्रा में रह सकते हैं ?

(ग) नये लेखकों के प्रति कितनी उपेक्षा रखते हैं ?

८—विचारधारा

निम्नलिखित विषयों पर आपके निजी विचार क्या हैं ?

(अ) क्या साहित्यिक को स्वतंत्र विचार रखना जरूरी है ?

(ब) क्या साहित्यकार के लिए नशा करना जरूरी है ?

(स) साहित्य में चोरी का स्थान कितना ऊँचा होना चाहिए ?

(द) साहित्यकार को स्वच्छंद प्रेम कितनी प्रेरणा देता है ? क्या साहित्यकार को सफल कलाकार होने के लिए एक से अधिक शादियाँ करना जरूरी नहीं है ?

(क) क्या साहित्य राजनीति का ही एक दूसरा नाम नहीं है ?

९—उपलब्धियाँ

(अ) लिखित, संपादित व अनूदित पुस्तकों के नाम दीजिए। दूसरों से अपने नाम पर कितनी पुस्तकें लिखाई हैं? इस तरह के काम में मेरी कितनी सहायता कर सकते हैं?

(ब) क्या अब तक कोई पुस्तक आपको समर्पित हुई है? क्या उस पुस्तक का दूसरा संस्करण भी आपको ही समर्पित किया गया था?

(स) पिछले पाँच वर्षों में साहित्यिकों से कितनी बार आपकी गाली-गलौज हुई है? मार-पीट की नौबत आई या नहीं, यदि आई तो क्या इसके सबूत में कोई डाक्टरी या पुलिस की रिपोर्ट पेश कर सकते हैं?

(द) कापीराइट के सिलसिले में आप पर कितने मुकदमे चल चुके हैं?

(क) कवि-सम्मेलनों से कितनी बार निकाले गये हैं?

(ख) अब तक कोई साहित्यिक गुट स्थापित किया है या नहीं? कितने मेंबर हैं उस गुट के? क्या कोई उसकी अलग पत्रिका है?

(ग) कभी किसी बीमार कवि या लेखक की सहायता के लिए चंदा इकट्ठा किया है या नहीं? चंदे की रकम का असली उपयोग यहाँ लिखने की जरूरत नहीं है।

घोषणा

मैं यह घोषणा करता हूँ कि ऊपर लिखा विवरण एकदम ठीक है।

हस्ताक्षर . . . .

गवाह के हस्ताक्षर . . . .   तिथि . . . .

स्थान . . . .

काउन्टर लाइन

यहाँ किसी संसदसदस्य, विधान सभा के सदस्य, राजपत्रित अधिकारी, तहसीलदार, या सरकारी स्कूल के हेडमास्टर के दस्तखत होने जरूरी हैं।

कहानी का प्लाट

कहानी का प्लाट

मेरे मित्र सुन्दरलाल गुप्त एक निहायत सरल हृदय के व्यक्ति हैं और इसी कारण वे अपनी किसी भावना या विचार को अपने तक ही सीमित नहीं रख सकते। जो कुछ उनके मन में आता है, उसका जल्दी ही साधारणीकरण कर दिया जाता है यानी कि उनके सारे प्रोग्राम उनके सारे दोस्तों को फ़ौरन ही पता लग जाते हैं। जब भी उन्हें नई धुन सवार होती है तो सारे मित्रों की मुसीबत आ जाती है और तारीफ़ की बात यह है कि उन्हें कोई-न-कोई धुन सवार होती ही रहती है। खैर, बड़ी मुसीबत तो उस दिन आई जिस दिन उनके किसी स्नेही मित्र ने उन्हें यह सलाह दी कि गुप्त जी आप अपना जीवन और कामों में क्यों बर्बाद करते हैं? आप तो कहानियाँ लिखा कीजिए। भगवान ने आपको इसीलिए उत्पन्न किया है।

बस इतना होना था कि गुप्त जी ने अपने मित्र को धन्यवाद दिया और उसकी बात गाँठ में बाँध ली। शाम को हम सब लोगों को खूब डाँटा। कहा कि हममें से उनका सच्चा मित्र कोई भी नहीं। यदि किसी शुभाकांक्षी मित्र ने पहिले ही उन्हें यह बता दिया होता कि वे कथा-साहित्य की सृष्टि के लिए ही मनुष्य रूप में उत्पन्न हुए हैं तो भारती का मन्दिर इतने दिनों खाली क्यों रहता? इसके बाद उन्होंने कुछ विषय बदला और बोले कि समाज में सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति साहित्यिक ही होता है और यदि नहीं होता तो होना चाहिए। जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः... और साहित्य में यदि कोई ऐसा अंग है

जो समाज का पूरी तरह विश्लेषण कर सकता है तो वह है कहानी। बाकी सब तो कचरा है। कविता ? अरे साहब क्या दकियानूसी आदमी हैं आप भी। देश को डुबोया किसने ? पद्माकर व बिहारी ने। देश का पतन किसने किया ? सूर और जयदेव ने। देश का उत्थान तभी हुआ जब कि प्रेमचंद या शरत् ने इस धरती पर जन्म लिया। फिर उन्होंने गीता के किसी श्लोक का हवाला दिया जहाँ भगवान कृष्ण कहते हैं कि जब-जब इस पृथ्वी पर धर्म की ग्लानि और अधर्म का उदय होता है, तभी-तभी मैं (कहानीकार के रूप में) अवतरित होता हूँ।

गुप्त जी की बात का काट हमारे पास न था। वे तगड़े आदमी थे और उनके साथ बौद्धिक चर्चा भी कभी शारीरिक संबंधों का रूप धारण कर लिया करती थी। उनकी बात की काट का मतलब था स्पीरिट, टिंचर आयडीन और फर्स्ट एड की और चीज़ों से अवलम्ब-संबंध स्थापित करना। शरीर को धर्म का प्रथम साधन मानते हुए, हम लोगों ने हाँ-में-हाँ भरी। जैसे ही उन्होंने कहा कि वे कल से कहानियाँ लिखने जा रहे हैं तो हम सभी ने हिन्दी-साहित्य के भविष्य का विचार कर ठंडी आह भरी और फिर एक स्वर में कहा—गुप्ता जी जिंदाबाद।

इसके उपरांत गुप्त जी ने हम लोगों से इस तरह बातें शुरू कीं जैसे वे किसी प्रेस-कांफ्रेंस के सामने बोल रहे हों। उन्होंने अपनी कुछ आने वाली कहानियों के शीर्षक भी बताये और यह भी घोषित किया कि उनका एक संग्रह तो इसी वर्ष आयेगा।

२

मेरा खयाल है कि गुप्त जी ने उस रात कथा-साहित्य पर खूब अध्ययन किया। रात को वे लाइब्रेरी से अज्ञेय, प्रेमचन्द, खलील जिब्रान और खुदा जाने क्या-क्या निकाल कर लाए। 'चाय की कहानी' नामक एक पुस्तक जो 'टी एक्सपेंशन बोर्ड' की ओर से मुफ़्त आई थी और जिसमें चाय के विषय में कुछ ज्ञातव्य तथ्य दिए गए थे, वह भी उन्होंने

मनोयोग से पढ़ी। सुबह-ही-सुबह वे मेरे पास आए और बोले—"यार कुछ पता भी है ?"

"क्या हुआ ? क्या स्टालिन फिर से मर गया ?" हमने उत्सुकता-वश पूछा।

"अरे मित्र, स्टालिन के मरने से क्या होता है ? एक क्या दर्जनों डिक्टेटर भी मर जाएँ तो क्या ? आज एक साहित्यिक का जन्म हुआ है! जानते हो, एक साहित्यिक कितने स्टालिनों के बराबर है ?"

हमें पता लगते देर न लगी कि गुप्त जी इस वक्त उड़ान में हैं। चुप रहना ही ज्यादा अच्छा होगा। वैसे भी हमें साहित्यिकों व स्टालिनों की 'कनवर्शन टेबुल' याद न थी जो बता सकते कि एक साहित्यिक कितने स्टालिनों के बराबर उतरता है। इतने में गुप्त जी आगे बढ़े।

"मित्र, कुछ सुनते भी हो, आज से कहानी का इतिहास ही बदल जायगा। हम तो तीन कहानी रोज लिखेंगे, सफलता बिना परिश्रम के नहीं। बस, लगे रहने की बात है। कहानी लिखने के लिए सिर्फ तीन चीजें चाहिए—शैली, चरित्र-चित्रण और प्लाट।"

हमने संतोष की साँस ली। अच्छा ही हुआ कि कहानी लिखने के लिए हमारे कमरे और कलम की उन्हें जरूरत नहीं महसूस हुई। गुप्ता जी कहते गए—"चरित्र-चित्रण में हमें कोई परेशानी नहीं। शैली ? वह धीरे-धीरे आती है। मगर यार यह प्लाट क्या बला है ?"

अब हम अपनी हँसी न रोक सके। गुप्त जी थे भूगोल के विद्यार्थी; प्लाट से उन्हें कदाचित् लंबी-चौड़ी धरती के खंड का ज्ञान होता था जिस पर कि पात्रों को लाकर खड़ा करना था। हमने बात बदल कर कहा—"आप भी क्या बातें करते हैं। प्लाट का अर्थ है कथा-वस्तु से। पुरानी कहानियाँ कथाप्रधान होती थीं। आजकल की कहानियाँ तो एकदम चरित्रप्रधान व शैलीप्रधान होती हैं। जिस कहानी में कथा-वस्तु नहीं के बराबर होती है वही श्रेष्ठ मानी जाती है। आप प्लाट की चिंता छोड़िए और चरित्र-चित्रण व शैली पर ध्यान दीजिए।"

गुप्तजी को सलाह कुछ जमी नहीं। बोले--"नहीं भाई, अपन ठहरे दकियानूसी। प्रगतिशील हम नहीं बनेंगे। कहानी तो कथा-प्रधान ही होनी चाहिए। देखा है वह नया सिनेमा? बिना कहानी के कैसा फीका-फीका लगता है। हम तो कहानी में प्लाट जरूर रखेंगे। मगर यार यह प्लाट मिलेगा कैसे? हमने तपाक से उत्तर दिया कि इसमें क्या। अरे किसी भी बड़े लेखक से मिल लो और पूछ-ताछ कर लो। जहाँ से वे प्लाट लेते हों वहीं से तुम भी लेना। और इसके बाद हमने उन्हें जोशी जी, अश्क जी व भारती जी वगैरा का पता बताया और इन सज्जनों के प्रति शुभकामनाएँ रखते हुए हमने गुप्त जी से विदा ली।

२

गुप्त जी ने हमसे तीन दिन बाद फिर भेंट की। बातचीत के दौरान बताया कि वे कई कहानीकारों से मिले मगर ये लोग तो कहानी के शास्त्रीय पक्ष के विषय में बहुत कुछ नहीं जानते। कुछ तो हद्दर्जे के दंभी भी हैं और ठीक तरह बातें भी नहीं करते। एक सज्जन ने बातें तो की पर बजाय कहानी लिखने के आलू की खेती करने के फ़ायदे समझाए। फिर गुप्ता जी बोले कि फलाँ साहब ने अलबत्ता जरूर बताया कि प्लाट के बारे में क्या पूछना? आपके हृदय में भावना चाहिए, प्लाट तो खुद-ब-खुद निकल आता है। किसी सड़क के चौरास्ते पर आपको एक पूरे उपन्यास की सामग्री प्राप्त हो सकती है।... इतना कहकर गुप्ता जी सहसा कुछ रुक गए और फिर अपने स्वर को धीमा करके बोले कि यह सड़क के चौराहे वाली बात उन्हें बहुत पसंद आई। मगर यह कथन सत्य है तो कहानीकार को इसके अलावा कुछ नहीं चाहिए कि वह किसी ऐसे मकान में रहे जिसके पास खूब चौराहे हों। सफलता के रहस्य कभी-कभी ऐसी ही छोटी-छोटी बातों में छिपे रहते हैं...

होस्टल के इर्द-गिर्द भी तीन-चार चौराहे थे और उनकी सप्लाई कम होने की निकट भविष्य में कोई आशा भी नहीं थी। उसी दिन शाम को कोई छः बजे गुप्ता जी कर्नलगंज से निकले और चौरास्ते की ओर

लपके। चौराहा खाली था। जाड़ों के दिन थे और लोग घरों में सूरज के डूबते ही घुसने लगे थे। चौरास्ता खाली था और उपन्यास तो क्या किसी छोटी-मोटी कहानी का प्लाट भी कहीं नजर नहीं आता था। शायद प्लाटों पर भी जाड़े का खौफ़ रहता हो। गुप्ता जी ने कुछ देर तो प्रतीक्षा की और फिर उनके सिक्स्थ सेंस (Sixth Sense) ने जोर मारा। उन्होंने कमला नेहरू मार्ग व थार्नहिल रोड के क्रासिंग की ओर कदम बढ़ाए।

इस चौराहे पर भी कोई खास चहल-पहल न थी। हाँ, अलबत्ता एक सिपाही जरूर वहाँ खड़ा था। सड़कों के दोनों ओर लंबे-लंबे पेड़ थे। मखमली घास बिछी थी और दूर-दूर पर लगे बिजली के बल्ब बड़े प्यारे लगते थे। कहीं-कहीं कोई रिक्शा गुजर जाता था और कभी-कभी एकाध मोटर भी।

गुप्ता जी अनमने भाव से इन सब चीजों को देखते रहे। ये चीजें कहानी के विकास में सहायता दे सकती हैं पर उसका आधार नहीं बन सकतीं। गुप्ता जी धीरे-धीरे हताश होने लगे। धीरे-धीरे उन्होंने साहस बटोरा: पुलिस के सिपाही से ही क्यों न कुछ पूछा जाय! कौन जाने, क्या सोचता है बेचारा खड़ा-खड़ा। न जाने कितने मुजरिम और जुर्म देखे हैं बेचारे ने। पता नहीं, किन परिस्थितियों में अपने बीबी-बच्चों को दिहात में छोड़कर दूर यहाँ चौराहे पर खड़ा है बेचारा। गुप्ता जी के ज्ञान-चक्षु खुल गए। उन्होंने एक सिगरेट निकाली और सिपाही की ओर बढ़ाई।

पता नहीं क्यों, इस सिपाही को हिन्दी-साहित्य के भविष्य से कोई विशेष प्रेम न था। वह वैसे ही काफी देर से गुप्ता जी की हरकत देख रहा था। अजीब शरीफ आदमी है; छः से ऊपर बज गए और ये हजरत सड़क पर मूर्ति की भाँति खड़े, हर आने-जाने वाले रिक्शे के भीतर झाँकने की कोशिश कर रहे हैं। कौन जाने किसी कालेज की लड़की की टोह में हों जो कहीं सिनेमा देखने गई हो। कौन जाने, कोई

कम्यूनिस्ट ही हो, वगैरा-वगैरा। उसने सिगरेट लेने से इन्कार कर दिया और उन्हें गौर से देखने लगा।

"आपका नाम ?" गुप्ता जी ने पूछा—कहानी में चरित्रों का नाम बताना जरूरी होता है।

"हूँ . . ."

"आप कौन जिला के रहनेवाले हैं ?"

"हूँ . . ."

"कै बजे तक है आप की ड्यूटी ?"

इस पर सिपाही को कुछ शक हो गया। हो सकता है पुलिस के गुप्तचर विभाग का कोई अफसर है जो उसके काम का निरीक्षण कर रहा है। उन दिनों सिविल पोशाक में काफी गुप्तचर ट्रैफिक पुलिस का मुआयना कर भी रहे थे। मुमकिन है मुझसे कोई गलती ही हो गई हो और शायद इसी कारण मेरा नाम पूछा जा रहा हो। वह घिघिया कर बोला. . . सरकार. . . आज माफ़ी दो. . . हमें पता न था कि हजूर हमारा ही इन्सपेक्सन कर रहे है. . . हमारी तबीयत आज दिन कुछ खराब. . .

गुप्त जी का सन्देह दूर हो गया। बड़ी दुखी आत्मा छू ली थी उन्होंने। एकदम मर्म पर हाथ पड़ा था। संभव है उपन्यास कुछ बड़ा हो जाय। कोई परवाह नहीं—कई खंडों में छपायेंगे। 'शेखर : एक जीवनी' की तरह। संभव है, उनके सिद्धान्तों के विपरीत उपन्यास दुखांत ही हो जाये। ठीक है चलो, एक ट्रेजेडी ही सही, उन्होंने अपनी नोट बुक निकाली और बोले—बंधु, डरो मत। डरने की कोई बात नही। हम तुम्हारे इंस्पेक्टर नहीं हैं। हम हैं इस महान् देश के भावी कलाकार। हमें कहानी के प्लाट की जरूरत है। तुम अपनी जीवन-गाथा यदि हमें सुना दो तो हम तुम्हें हमेशा के लिए अमर कर दें. . ."

सिपाही पर जो इसका असर हुआ वह गुप्त जी की आशा के विपरीत

था। वह अपनी चबूतरी पर फिर चढ़ गया और मूँछ मरोड़ कर हवा-लाती ढंग से बोला, "आप यह सब क्या कहते हैं ?"

गुप्त जी ने अपनी इच्छा अधिक विशद रूप से व्यक्त की। सिपाही बोला :

"नहीं साहब। हम हैं कामदार आदमी; देखिए, हटिए, वह मोटर आ रही है ... शायद एस० पी० साहब की है ... हटिए साहब... हमें नहीं करना है वंश अमर... आप ही को मुबारक हो..."

गुप्त जी बोले—"सोच लीजिए। मैं आपका असली नाम ही रहने दूँगा। बड़ी-बड़ी लाइब्रेरियों में किताब जायगी। एक कापी आपको भी दूँगा... चमड़े की जिल्द वाली..."

सिपाही को गुप्त जी के दिमाग पर कुछ संदेह हुआ। वह सख्त आवाज में बोला, "हटते हैं आप या..."

"अच्छा मैं तुम्हें दो कापियाँ दूँगा उपन्यास की। दोनों चमड़े की जिल्द की ..." गुप्त जी ने अन्तिम अस्त्र छोड़ा। इस तीर के छोड़ने के बाद वे रणक्षेत्र से हट गए।

४

चौराहे से हटने के उपरांत गुप्त जी मालवीय होस्टल के सामने से होते हुए कटरे की ओर बढ़ने लगे। कुछ दूरी तय करने पर उन्होंने देखा कि एक लड़का कोठी की दीवार के पास खड़ा है—साइकिल दबाये। बँगले की हैज में से कुछ फुसफुस हुई और एक अदद लड़की निकल कर बाहर आई। तमाशा देखिए कि वह उस लड़के के साथ हो ली। गुप्त जी उन दोनों के पीछे-पीछे काफी देर तक चलते रहे। अगले चौराहे तक उन दोनों ने बातें कीं। इसके बाद वे खड़े होकर बातें करने लगे। फिर लड़का साइकिल पर सवार होकर चला गया और लड़की लौटने लगी। मुस्कराते हुए गुप्त जी ने—जो कि इस समय एक रोमांटिक

उपन्यास के दूसरे खंड के प्रथम अध्याय का प्रारंभ सोच रहे थे—कहा...
"क्षमा कीजिए . . . सेवक को गुप्ता कहते हैं"—

"जी ई ई ई ई . . . ?"

"जी गुप्त—सुन्दरलाल। अंग्रेजी में एस० एल० गुप्ता. . .एम० ए० में पढ़ता हूँ...उपन्यास भी लिखता हूँ . . . आज्ञा हो तो. . . ."

"तो क्या "

"जी आप मेरे उपन्यास की नायिका हो जायें. . . जी मैंने सब देख लिया है। कुछ-कुछ सुन भी लिया है. . ."

यहाँ लड़की से एक भूल हो गई। गुप्ता जी ने कहा था उससे उपन्यास की नायिका बनने के लिए और वह समझी कि वे उसे जीवन की नायिका बनाना चाहते हैं। तमतमा कर बोली, "शर्म नहीं आती ? रात को अकेला देखकर लड़कियों को छेड़ते है ? माँ-बहिन नहीं है आप की ? ऐ पुलिसमैन इधर आवो. . . यह बदमाश हमें तंग कर रहा है. . ."

पुलिसमैन ने गुप्त जी की ओर, और गुप्त जी ने पुलिसमैन की ओर देखा। दोनों को खयाल आया कि एक-दूसरे को कहीं देखा है। बात यह थी कि यह वही चौराहे वाला सिपाही था जो ड्यूटी खत्म करके पुलिस लाइन जा रहा था। उसने गुप्ता जी को देखा और कहा, "अरे, आप यहाँ आ गए. . ." फिर उसने लड़की की ओर मुखातिब होकर कहा कि इनका दिमाग कुछ खराब है। अभी कुछ देर पहिले हमसे बक-झक कर रहा था. . . आप जाते हैं यहाँ से या नहीं ?"

गुप्ता जी उपन्यासकार बनना थोड़ी देर के लिए भूल चुके थे। एक साधारण पुलिसमैन के द्वारा पागल करार दिये जाने से उनके स्वाभिमान पर चोट पहुँची थी। वे और पागल ! यह अपमान और वह भी एक स्त्री-रत्न के सामने ! उन्होंने कलम जेब में रक्खी और बोले. . . "जबान सँभाल कर बात कीजिए. . . वरना अभी दरोगा बना दूँगा. . . .बड़ चले घर से कहने कि ये पागल हैं. . ."

सिपाही ने जब इतने त्विक प्रोमोशन की चर्चा सुनी तो वह सहम गया। उसे इस बात का तो पूरा विश्वास था कि इन सज्जन का दिमाग ज़रूर पटरी से कुछ इधर-उधर है, पर वह युद्ध के लिए तैयार नहीं था। उसने कुछ शांति की चर्चा की जिसे गुप्त जी ने उसकी कायरता समझा। नतीजा यह हुआ कि जब तक इधर-उधर के लोग इकट्ठा हों, तब तक, ये दोनों परस्पर काफी घनिष्ठ शारीरिक संबंध स्थापित कर चुके थे। एक-दूसरे को पृथक करने में काफी वक्त लगा। किसी तरह बात रफ़ा-दफा हुई। गुप्त जी की सवारी आगे बढ़ी। पुलिस वाला उन्हें घूर-घूर कर देखता रहा।

५

कुछ दूर चलने पर गुप्त जी को ध्यान आया कि उनकी देह कहीं कहीं से दुख देती है। भूख भी उन्हें लगी थी। सामने फ्रंटियर रेस्तराँ का साइन बोर्ड लगा था। गुप्ता जी उसके भीतर चले गए।

होटल साधारण था। कोई छः मेज और कुर्सियाँ। मामूली पर्दे पड़े हुए। एक ओर छोटा-सा काउंटर, जहाँ एक बूढ़े सज्जन फर्देदार पगड़ी बांधे सिगरेट पी रहे थे। वे शायद होटल के मालिक थे। वे ही ग्राहकों से पैसे लेते और सौंफ की तश्तरी उनकी ओर बढ़ाते थे। गुप्ता जी की कलापूर्ण दृष्टि इन सज्जन पर जाकर स्थिर हो गई। सोचने लगे, हो न हो, वह पेशावर का निवासी है. . . दर्रा खैबर. . . जहाँ के पठान मशहूर हैं। पता नहीं बेचारे पर देश के विभाजन से क्या-क्या मुसीबतें पड़ी हैं। सब कुछ खो कर गरीब ने शायद यहाँ कटरे में होटल खोला है. . . गुप्ता जी चाय पीते गये और सोचते गये। गर्म-गर्म प्याले से कभी-कभी माथे की चोटें भी सेंकते! सोचा, अगर यह होटल वाला ही कोई कहानी सुना दे तो आज का दिन सफल हो जाय। इसी खुशी में गुप्ता जी ने डिनर का आर्डर दे दिया। खूब खाया। फिर काफ़ी पी। फिर एक सिगरेट सुलगा कर काउंटर के

पास गए। बैरे से बिल बनवाया और इन्होंने मेनेजर से दोस्ती शुरू की :

"आप तो पेशावर के हैं न ?"

"नहीं हुजूर। हम डेरा इस्माइल खाँ के हैं। वहाँ बर्तनों का बिजनेस करते थे। छोटा-मोटा धंधा था।"

"पार्टीशन से यहाँ आना पड़ा ?"

"नहीं जनाब, हम तो इधर ही रहते थे। पहिले मिर्जापुर में ट्रक चलाते थे, फिर ठेका लिया और अब—तीन रुपए सात आने हुए आपके बंदा परवर. . ."

गुप्ता जी का हौसला उसकी बातें सुनकर ठंडा पड़ गया था। उन्होंने जेब में हाथ डाला, पर वहाँ पर्स नहीं था। बात यह थी कि पुलिसमैन के साथ हुए संघर्ष की बेला में वह वहीं सड़क पर रह गया था। गुप्ता जी ने घिघिया कर कहा". . .देखिए मालूम पड़ता है कि हमारा पर्स. . ."

"जी ईईई ?"

"मालूम होता है कि हमारा पर्स कहीं रह गया है। अगर आप नाराज न हों तो ये पेन. . ."

"बाबू जी, आपको शरम तो न आती होगी. . . इसीलिए इतनी मीठी-मीठी बातें कर रहे थे !"

"इससे तो ये फैशन वाले छोकरे माँग कर खाने लगे"—नेपथ्य से आवाज आई। एक दूसरे दिहाती ने कहा, "खाएँ कहाँ से बेचारे; इत्र फुलैल से ही पैसे नहीं बचते।"

इन्होंने पीछे घूमकर देखा। एक सज्जन खाना खा रहे थे और उन्हें देख कर मुस्कुरा रहे थे। इससे पहिले कि कोई मध्यस्थता करे, होटल में रचनात्मक कार्यवाही शुरू हो गई। कुछ और स्वयं-सेवक भी आ गए। एक साहब जिन्होंने 'आवारा' छाप बुशर्ट और 'मुड़-मुड़ कर न देख' छाप पैंट पहिन रखी थी, सारे कार्यक्रम में बढ़-बढ़ कर हिस्सा ले रहे थे। इतने में मैनेजर ने बढ़कर सड़क पर से गुजरते

हुए पुलिस वाले को बुलवा लिया। दुर्भाग्य वश, यह पुलिस वाला फिर वही था।

इसके बाद का विवरण हमने गुप्त जी से नही पूछा। वह हमें मालूम ही था। मेस बद होने के कारण कुछ लडके फ्रटियर होटल में खाना खाने गए थे। उन्होंने गुप्ता जी को मेज-कुर्सियो के नीचे से बटोरा।

गुप्त जी ने बाद में बताया कि उन्हे चोट का इतना अफसोस नही था जितना कि इस बात का कि प्लाट कई बार हाथ मे आते-आते निकल गया। सांत्वना बँधाते हुए उनके किसी स्नेही मित्र ने कहा—"आप तो कथानक के लिए इतना कष्ट व्यर्थ ही उठा रहे है। वैसे जो कुछ आप पर आज शाम गुजरा है वह भी एक दिलचस्प कहानी बन सकता है पर यदि आपको यह पसद नही तो किसी भी विदेशी कहानी को उठा लीजिए और छपाइए अनुवाद अपने नाम से। कितने ही बडे लोग ऐसा कर रहे है . . .

इस सलाह का जो असर गुप्त जी पर पडा, वह मेरी अगली कहानी का प्लाट होगा।

डॉक्टर पद्मधर की कविता का विकास

डॉक्टर पद्मधर की कविता का विकास

डाक्टर पद्मधर जी जन्मजात् प्रतिभावान् पुरुष थे। पुनर्जन्म-वादियों ने इस सत्य को बीसवी शती के प्रारंभ में ही स्वीकार कर लिया था कि उनके शरीर में किसी महान् आत्मा ने अपने को साकार किया है। हाँ, यह बात अलबत्ता और है कि वैज्ञानिक यंत्रों के अभाव के कारण अभी इस तथ्य पर एकमत नहीं हो पाया है कि वह महान् आत्मा है किसकी? —यानी कि प्लेटो की या होमर की या अश्वघोष की? खैर यह तो विषयान्तर हुआ, कहने का मूल अभिप्राय यह है कि पद्मधर जी जन्म से ही प्रतिभावान् पुरुष थे। प्रतिभा का यही अंकुर धीरे-धीरे बढ़कर एक दिन विशाल वट-वृक्ष के रूप में परिणत हो गया।

पद्मधर जी की प्रतिभा का प्राथमिक परिचय इतिहासकारों को उनके हस्तलेखों से मिलता है। तख्ती लिखने की स्थिति से ही उनमें चित्रकला की भावना स्पष्ट रूप से प्रकट होने लगी थी। बुद्धि उनकी बचपन से ही तीव्र थी। जब मिडिल स्कूल में मास्टर चीख कर डिप्टी साहब के सालाना दौरे पर पूछते कि "महाराना प्रताप ने अकबरकी नाक में क्या कर दिया था?" तो वे सबसे पहिले कहते कि 'दम!' और जब डिप्टी साहब पूछते कि "अकबर के बाद जहाँगीर हिन्दुस्तान के किस पर पर बैठा?" तो पद्मधर जी निःसंकोच कहते कि 'तख्त पर!' आगे चल कर कस्बे में जब मास्टर मुंशीराम की नौटंकी आने लगी तो वे उसके पर्दे रँगने लगे। पर्दे रँगने के साथ-साथ अभिनय-कला के प्रति

भी उनका प्रेम उत्पन्न हुआ। एक कला से दूसरी का जन्म होता है और इसी कारण कला को शाश्वत माना गया है। हाँ, तो वे फिर नियमित रूप से नौटंकी में भाग लेने लगे। आगे चलकर उनकी प्रतिभा इस दिशा में इतनी विकसित हो उठी कि 'सुलताना डाकू' उर्फ 'शेरे बिजनौर' से उन्होंने एक साथ तीन पात्रों की भूमिकाएँ निभाई। ये उनकी प्रतिभा के प्राथमिक चरण थे।

प्रारंभिक शिक्षा समाप्त होने के उपरांत पद्मधर जी शहर गए। कालेज में बुरी संगति व पुनर्जन्म के कुछ बुरे संस्कारों के कारण उनकी रुचि साहित्य की ओर प्रवृत्त हो गई। उन्होंने पहिले कुछ कहानियाँ लिखीं। चन्द्रकांता की शैली पर 'विचित्र कांता' उर्फ 'रंगीन शैतान' नामक उपन्यास का एक भाग भी लेखनी-बद्ध किया। इस उपन्यास के कथा-सूत्र का आधार एक फिल्मी गाना था। जिसकी प्रथम पंक्ति थी ''कोई राजा फँस गया था इक परी के जाल में।' उनके हिन्दी-अध्यापक उनकी इस कृति से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने एक दिन भरे क्लास में यह कह दिया कि पद्मधर जी के भीतर कोई बड़ा कथाकार छिपा बैठा है।

इस उक्ति से पद्मधर जी को विस्मय भी हुआ और संतोष भी। संतोष तो हुआ इस बात पर कि चलो एक अदद कथाकार भीतर बैठा है, ठीक ही है, कुछ लेता थोड़े ही है, वक्त पर कहीं काम आयेगा। विस्मय इस बात पर हुआ कि आखिर यह भीतर घुसा किस वक्त? वे तो रात को सोते भी मुँह ढक कर थे। चलो खैर, जो हुआ सो हुआ, अब भला इसी में है कि किसी तरह निकलने न पाए। पद्मधर जी ने उस दिन से हँसना-बोलना कम कर दिया। इसी कारण कुछ ईर्ष्यालु लोग उन्हें भ्रमवश दंभी भी कहने लगे।

'विचित्रकांता' के द्वितीय भाग की समाप्ति के उपरांत पद्मधर जी के कथाकार ने छुट्टी की अर्जी दे दी। ऐसा लगा कि कथाकार कवि होना चाहता था। उन्होंने कहा—'एवमस्तु।' कथाकार उस दिन से

कविता करने लगा। समस्या-पूर्ति से यह अभ्यास प्रारंभ हुआ। बाद में नए छंद और नए रसों की सृष्टि होने लगी। यहाँ से आगे का सारा इतिहास उनके कवि-जीवन के विकास की रूप-रेखा है।

२

कवि-धर्म स्वीकार करने के उपरांत सबसे पहिला काम जो उन्होंने किया, वह था गणों पर अधिकार स्थापित करना। कहते हैं गणों के कारण ही शिव संसार के संहार की शक्ति रखते हैं और उनके बड़े लड़के (रेजिडेंशियल एड्रेस—Vill & Po. कैलाश, दि हिमालयाज) मिस्टर गणेश कहलाते हैं। पद्मधर जी ने काफी गणों को शीघ्र ही काबू में कर लिया। दगण, रगण, यगण इत्यादि गण तो हर समय उनकी हाजिरी बजाने लगे। कवित्त, सवैया इत्यादि की पूर्ति माँग से अधिक होने लगी और इसी से उनकी कीमत कुछ गिरने लगी। पद्मधर जी को यह समझते देर न लगी कि जमाना छायावाद का आ गया है।

नई चेतना ने उन्हें नई प्रेरणा दी। समकालीन लोकप्रिय कवियों की शैली पर उन्होंने कुछ काव्य-ग्रंथों की भी रचना की जिनमें 'निशाचर निमंत्रण' ने कुछ ख्याति भी पाई। उनके कुछ फुटकर गीत (जैसे 'जल गई आज फिर लालटेन," दबाकर निज मुख में दो पान, मुस्कुरा दी थीं क्या तुम प्राण ?') आगे चलकर काफी ख्याति को प्राप्त हुए। कहते हैं कि छायावाद काल में पद्मधर जी को गीतों का कभी अभाव नहीं रहा। इसका प्रमुख कारण यह था कि उन्हें उन खेतों और पेड़ों का किसी तरह पता लग गया था जिनके विषय में एक दूसरे प्रख्यात कवि ने भूल से उन्हें कुछ खबर दे दी थी :

दूर उन खेतों के उस पार
जहाँ तक गई नील झंकार
वहीं, उन पेड़ों में अज्ञात
चाँद का है चाँदी का वास

उन्हीं में छिपा कहीं अनजान
मिल गया अपना गान !

छायावाद व हालावाद भी उनकी प्रतिभा को पूरी तरह कुंठित न कर सके। प्रगतिवाद का जमाना आ गया और पद्मधर जी की प्रतिभा पहिली बार पूरी तरह मुखर हुई। वे वास्तव में प्रगतिवादी ही थे; भ्रम व ईर्ष्या से उन्हें लोग अवसरवादी कहते थे। मजदूरों और किसानों के जलूसों के लिए उन्होंने काफी कोरस लिखे। उनका एक गीत जिसमें उन्होंने जन-जीवन की क्रांति का संदेश दिया था अभी तक बच्चों को याद हैं। प्रगतिवाद पर आधारित एक विशालकाय खंडकाव्य की रचना पद्मधर जी कर ही रहे थे कि उन्हें नई कविता की धुन सवार हो गई। युग परिवर्तन का पता उस समय लगा जब कि टाउनहाल में किसी ने यह कविता पढ़ी :—

एक लड़का था,
वह खड़ा था ,
उसके सिर पर
घड़ा था,
लड़का गिर गया
घड़ा—
फिर भी खड़ा था !

पहिले तो इस कविता का उन पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा। वैसे भी लड़का और घड़ा कोई खास साहित्यिक शब्द नहीं। कहाँ अनुसार, प्रसार, संसार, संचार, अभिसार; चंचल, कलमल, दलदल, शाद्वल और श्यामल; और कहाँ लड़का और घड़ा ! और फिर इसमें काव्यत्व भी क्या ? अरे लड़का बेवकूफ था जो सिर पर घड़ा रखकर घूमता था। कभी कोई समझदार व्यक्ति सिर पर घड़ा लिए घूमता देखा है ? खैर, चलो कोई बात नहीं। अगर घड़ा फूट भी गया तो क्या ? घड़ों का

स्वभाव ही फूटने का होता है । यदि घड़े फूटना ही बंद कर दें तो सृष्टि कैसे चले ? और अगर लड़के के चोट या मोच आ गई तो बरनौल लगा दो, बड़ी अच्छी दवा है । छोटे-बड़े हर तरह के साइज में आती है । रेडियो सीलोन के अनुसार यह सौ मर्जों की एक दवा है । उषा काल होते ही सिंहल द्वीप का कवि गाता है :—

खुजली हो या खारिश हो
चोट हो या मोच हो
जख्म हो या घाव हो—
ले लो जी बरनौल
सौ मर्जों की एक दवा है
ब—र—नौ—ल

मगर जब उन्हें इस कविता का मर्म विस्तार में अवगत कराया गया तो उन्हें पता लगा कि उनका पहिला दृष्टिकोण पूँजीवाद से प्रभावित था । काव्य का वास्तविक अभिप्राय इस प्रकार बताया गया :

(अ) नई कविता प्रतीकों पर चलती है । इस कविता में 'लड़का' जिसे संस्कृत में बालक और अंग्रेजी में लैड कहते हैं, मनुष्य जाति का प्रतीक है । अल्पवयस्क लड़के को प्रतीक इस कारण बनाया गया क्योंकि यह सर्वमान्य मत है कि सभ्यता व संस्कृति के इतने विकास के हो जाने पर भी इस विराट सृष्टि के सम्मुख मानव एक शिशु मात्र ही है । नियति के गूढ़ रहस्यों का अनुसंधान करने की उसकी क्रिया अभी शाश्वत रूप से जारी है और आशा की जाती है कि निकट भविष्य में भी वह उसी तारतम्यता के साथ प्रगति के बहुकंटकपूर्ण पथ पर अग्रसर होती रहेगी । घड़ा उन मान्यताओं, उन सामाजिक व वैयक्तिक आदर्शों का प्रतीक है जो कि मानव जाति के दुर्बल कंधों पर न जाने सृष्टि की किन आवश्यकताओं और इतिहास के किन अन्धगामी चरणों ने रख दिए हैं । इन्हीं झूठी मान्यताओं, असंभावित आस्थाओं के कारण मनुष्य जाति

पतन की ओर अग्रसर हो रही हैं पर आश्चर्य यह है कि मनुष्य पतित हो जाता है पर ये बंधन—वे मान्यताएँ फिर भी उसी तरह रह जाती हैं। 'घड़ा फिर भी खड़ा था!!' इसी सत्य की ओर संकेत करता है।

(ब) उपरोक्त कविता में भारत की वर्तमान आर्थिक व सामाजिक स्थिति का बहुत मार्मिक चित्रण किया गया है। दोनों महायुद्धों ने हमारे आर्थिक ढांचे को कितना जर्जर कर दिया है इसका वास्तविक चित्रण लड़का और घड़ा ही कर सकते हैं। अगर यह कहा जाता कि:—

एक सेठ था—
उसके सिर पर होल डोल था . . .

तो न केवल हम लोगों को हँसी ही आती वरन् उससे वर्तमान आर्थिक स्थिति का भी पूरा पता किसी को न लगता। कवि यह भी कहना चाहता है कि देश में इतनी बेकारी है कि लड़का लोग या 'बटु समुदाई' सारे दिन अपने शीर्ष स्थान पर घड़ा रखकर ही घूमते रहते हैं। यहाँ यह भी बता देना आवश्यक है कि आज-कल हमारी नई कविता विदेशों को काफी अधिक मात्रा में सप्लाई की जा रही है। और इसी कारण उसका ऐसा होना कि वे हमारी स्थिति से भली भाँति परिचित हो सकें, परमावश्यक है। इन्हीं ज्ञेय व अज्ञेय कारणों से हमारे कुछ नए कवि तो विदेश ही में रहने लगे हैं। यहाँ यह भी बता देना प्रसंग के बाहर न होगा कि हिन्दी-काव्य पर दोनों महायुद्धों का प्रभाव निश्चित करने के लिए साहित्यिक गोष्ठियों में छोटे-मोटे गृह-युद्ध यदा-कदा चलते रहते हैं।

(स) प्रस्तुत कविता एकदम 'लेबर क्लास' का प्रतिनिधित्व करती है। वह 'नतमस्तक तरुतलनिवासिनी' पिकनिक करती हुई किसी पूँजीवादी लड़की का चित्रण नहीं, वरन् एक मजबूर के लड़के की जीती-जागती तस्वीर है। इसी कारण इसकी भाषा साफ, सरल व मर्मस्पर्शी रक्खी गई है। इसके अलावा नई कविता में शब्द व ध्वनि पर इतना ध्यान

नही दिया जाता जितना कि अर्थ पर; क्योंकि नई कविता में 'अर्थ की लय' होती है।

इस आलोचना को समय-समय पर निकलने वाली एक पत्रिका में पढ़कर पद्मधर जी एकदम नई कविता के प्रेमी हो गए। गणों को डिस्चार्ज कर दिया गया। छंद और रस पेंशन पर चले गए। कुछ दिनों बाद डाक्टर साहब ने बताया कि नई कविता का लिखना अपेक्षाकृत बहुत सरल है क्योंकि उसमे छंद नहीं है, लय नही है और दूसरे यह जरूरी नहीं कि उसके चरणों की लंबाई इतनी या उतनी हो। एक शब्द या अक्षर की भी पंक्ति हो सकती है जैसे—

मछली
प्रपात
मैं ?

या—

ये शाम की रंगीनी
आइस्क्रीम
लिपस्टिक. . .
और वह—
अखबार बेचने वाला लड़का . . . ?
. . . .?
वह फिसला
. . . वह फिसला. . . .

तब से अब तक पद्मधर जी नई कविता के आचार्य हो गए हैं। कभी-कभी नई कविताओं के संग्रह भी निकालते हैं और कभी-कभी नई कविता की समालोचना भी करते हैं। पुरानी शैली पर लिखने वालों की वे धज्जियाँ उड़ा देते हैं। वैसे कुछ अंतरंग मित्रों का कहना है कि अकेले में वे कभी-कभी अब भी गीत लिखते हैं। अभी उस दिन कवि-

सम्मेलन में उन्होंने 'क्या आज तुम्हारे गृह में भी गर्दभ बोला ?' वाला मर्मस्पर्शी विरहगीत सुनाया था। पर ऐसी वारदातें अब कम होती है। अधिकतर समय बिंबों व प्रतीकों की संगति में ही व्यतीत होता है। अभी एक प्रख्यात आदर्शवादी कवि की रचना के जवाब में लिखे गए उनके नए संग्रह 'गला और बूढ़ा दाँत' में कुछ बड़ी यथार्थवादी कविताएँ संगृहीत की गई हैं जैसे :—

उत्तर दिशा को
अकेले न जाना, बावरी—
वहाँ कुत्ते रहते हैं
बहुत भूँकते हैं
उन्हें देखकर
देह से वस्त्र छूट जाते हैं
उधर न जाना. . .
उत्तर दिशा को
भूल कर न जाना लाड़ली,
वहाँ लड़के रहते हैं—
कालेज के,
वे सीटियाँ बजाते हैं
उसे सुनकर,
घर आने इच्छा छूट जाती है
उधर न जाना. . .
उत्तर दिशा को
अकेले न जाना मानिनी
वहाँ मोची रहता है
वो उधार माँगता है
. . . .
उधर न जाना प्रेयसि !

उधर न जाना मानिनी !
उधर न जाना साँवरी !

अब तो उनका खाना-पीना, उठना-बैठना भी कविता में होता है। धोबी से कहते हैं :—

अब नहीं है शेष कोई वस्त्र
जो दे दूँ तुम्हें मैं !

सारा जीवन ही काव्यमय हो गया है। मैं तो जब भी मिलता हूँ इस तरह बोलता हूँ :—

"कहिए डाक्टर साहब, ठीक हैं ?"

"कृपा"

"बिंब तो कुशलपूर्वक हैं ?"

"दया"

"प्रतीक तो ठीक तरह काम कर रहे हैं या वे भी छुट्टी कर गए छंद और रसों की तरह। ज्यादा मुँह न लगाइए इन्हें..."

"अनुग्रह"

और इसके बाद हम उस कविता की बातें करने लगते हैं जो दिन-प्रति-दिन नई से 'नई तर' होती जा रही है।
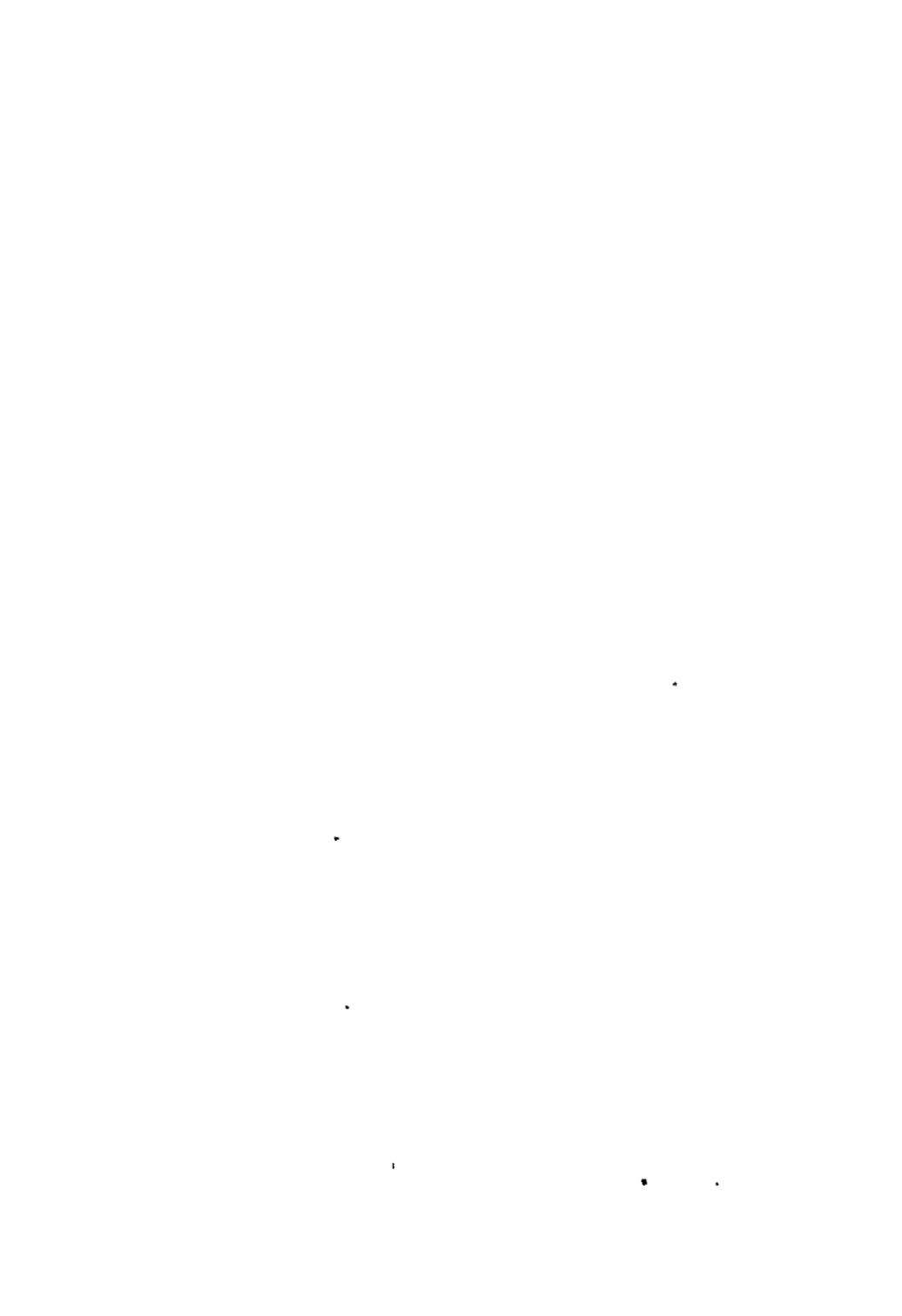
राजे-महराजे, साँप ग्रौर हाथी

राजे-महराजे, साँप और हाथी

यकीन मानिए कि विदेशी लोग---खास तौर से अमेरिकन टूरिस्ट जब भी हिन्दुस्तान आते हैं तो उनकी तीन चीजें देखने की बड़ी इच्छा होती है और ये तीन चीजें हैं---राजे-महराजे, साँप व हाथी। बम्बई में जहाज के लगते ही गाइड लोग उन्हें पकड़ लेते हैं और कहना शुरू कर देते हैं कि कितने बड़े-बड़े राजाओं, साँपों-व हाथियों से उनकी जान-पहिचान है और कितनी आसानी से वे उनकी (हाथियों की) सवारी करा सकते हैं। और पता नहीं, क्यों ये टूरिस्ट भी इन्हीं तीन चीजों को देखना पसंद करते हैं। यह एकदम सच है कि बम्बई की भूमि पर कदम रखते ही पहला प्रश्न जो गाइड से किया जाता है वह यही है कि हाथी की सवारी और स्नेक डांस कहाँ मिलेगा। ताजमहल, लाल-किला और बनारस के घाट---अजी साहब छोड़िए इन्हें, बाद में वक्त मिला तो एक चक्कर लगा लेंगे। कोई जल्दी नहीं। इनसे कहीं ऊँची-ऊँची इमारतें तो अमेरिका में ही हैं। और वहाँ की इमारतों में तो अनगिनत खिड़कियाँ हैं और लिफ्ट लगे हैं। ताजमहल वगैरह हैं पुराने जमाने की दकियानूसी इमारतें; जहाँ न लिफ्ट है, न फायर-प्लेस। इसी से तो जैस्टींग पायलेट के लेखक आल्डस हक्सले को वह पसंद नहीं आया।

इन तीन चीजों के अलावा जिन और चीजों से विदेशी लोगों की रुचि है वे हैं बुरका पहिने स्त्रियाँ, ध्यान लगाए साधु---कीलों के तख्तों पर बैठे हुए; और नृत्य करते हुए---हर बात पर नृत्य करते हुए---

आदिवासी। इन सब चीजों में इतनी दिलचस्पी होने के कारण भी कई हैं। राजे-महराजे साँप व हाथी खुद भी कोई कम आकर्षक वस्तुएँ नहीं हैं। दूसरे विज्ञान, समाजवाद व प्रजातंत्र की प्रगति के साथ-साथ ये वस्तुएँ बड़ी शीघ्रता से खत्म हो रही हैं। अमेरिका की जलवायु कभी राजा-महाराजाओं की पैदावार के लिए वैसे भी उपयुक्त नहीं रही—भले ही वैज्ञानिक, फिल्मी कलाकार व गवर्नर वहाँ जरूरत से ज्यादा होते हों। यही नहीं, इधर तो पूर्वी देशों में भी राजे-महाराजों का नया स्टाक आना एकदम बन्द ही हो गया है। जिस वस्तु की पूर्ति कम हो जाती है, उसकी माँग स्वतः ही बढ़ जाती है। तीसरा कारण यह है कि पिछली शताब्दी में जान-बूझ कर अंग्रेज शासकों ने विदेशों में हमारी सही स्थिति का पता नहीं लगने दिया। आम विदेशी जनता यही समझती रही कि भारतीय बड़े खुश-मिजाज लोग हैं: सारे दिन साँप नचाते हैं और रात भर हाथी की सवारी करते हैं। ऐसे भलेमानुस लोगों को स्वाधीन कर उन्हें स्वशासन के भार से पीड़ित करना ईसाई मत के विरुद्ध होगा—क्योंकि वह हिंसा होगी। खैर, कारण कुछ भी हो, क्योंकि इन वस्तुओं के विषय में विदेशियों को दिलचस्पी है, उनकी कुछ खास-खास बातें नीचे लिखी जाती हैं। आशा है विदेशी यात्री इनसे लाभ उठावेंगे।

राजे-महराजे

राजा और महाराजा में उतना अन्तर है जितना ब्राह्मण व महाब्राह्मण में। राजाओं की अनेक किस्में हैं। कुछ राजा वंशानुसार एक-दूसरे से भिन्न होते हैं, जैसे चन्द्रवंशी व सूर्यवंशी। कुछ राजा इस कारण राजा होते हैं कि उनके पिता राजा होते थे। शेक्सपीयर की वर्णन-शैली में कुछ राजा जन्म से राजा होते हैं, कुछ कर्म से, और कुछ ऐसे कि न जिन पर 'राजापन' लाद दिया जाता है। ब्रिटिश सरकार ने लड़ाई में चंदा देने वाले कितने ही अक्षत्रियों को राजा की पदवी दी।

'राजा' शब्द का प्रयोग राजा व महाराजा के अतिरिक्त और लोगों के लिए भी किया जाता है; वास्तव में राजा-महाराजा तो और ही नामों से पुकारे जाते हैं जैसे 'अन्नदाता' इत्यादि। गाँवों में जमींदार को राजा कहा जाता है और हर एक नई दुलहिन भी अपने पति को 'राजा' कह कर पुकारती है। इन सभी कारणों से विदेशी यात्रियों को चाहिए कि वे सच्चे और नकली राजाओं का अन्तर भली भाँति जान लें।

विदेशी लोगों को भारत के बारे में सही ज्ञान न होने के कारण इन राजा लोगों के दैनिक जीवन के विषय में अनेक भ्रान्तिपूर्ण धारणाएँ हैं। वे सोचते हैं कि ये लोग महलों में रहते हैं, हाथियों पर चढ़ते हैं, शिकार करते हैं, युद्ध करते हैं और कलाकारों का आदर करते हैं, इत्यादि इत्यादि। यह सब राजाओं के विपरीत जान-बूझ कर किया गया भ्रामक प्रचार है। राजा लोग होटलों में रहते हैं, मोटरों पर चढ़ते हैं, पोलो खेलते हैं, मुकदमेबाजी करते हैं और सिनेमे की एक्ट्रेस के साथ या सर्कस के मैनेजरों के साथ गप्प मारते हैं। कुछ राजा लोग तो विलायत में ही रहते हैं क्योंकि हमारे देश में जलवायु ठीक नहीं, मोटरों के लिए सड़कें अच्छी नहीं और पोलो के लिए ठीक भूमि नहीं। राजा लोग पहिले जमाने में बड़े दकियानूसी तरीके से रहते थे। दरवाजों पर नौबतें बजती थीं और घरों में रोशनी मशाल से की जाती थी। वे लोग भारी-भारी लोहे के जिरह-बख्तर पहिनते थे और ढाल-तलवार तक लगाते थे। वे इतने कृपण होते थे कि उनके कोष रत्नों से भरे रहते थे। वे बड़े स्वार्थी होते थे; सारे कवि और गायकों को अपने ही दरबार में रखते थे और उन्हें जागीर और इनाम का लालच देकर उनकी प्रतिभा के स्वाभाविक विकास में बाधा डालते थे। कुछ तो उनमें से इतने अंध विश्वासी होते थे कि मंदिर में मूर्तियाँ लगवाते थे और केवल सन्तान के लिए ही विवाह करते थे। इस प्रकार का जीवन ज्यादा दिनों तक बिताना कठिन होता था और इसी कारण वे वृद्धावस्था की बड़ी उत्सुकता

से प्रतीक्षा करते थे और वृद्ध होते ही वन को चले जाते थे। राग-रंग का किसी को शौक न था। दुर्योधन जरूर कुछ हिम्मत रखता था और खुल कर जुआ खेलता था। चरित्र की निर्बलता के कारण पुराने राजा लोग जनता की भावनाओं का बड़ा ध्यान रखते थे और एकाध ने तो किसी शूद्र के कहने से अपनी पत्नी ही को त्याग दिया था। व्यावहारिक सभ्यता व एटीकेट भी उन्हें कम ही आता था; बहादुरशाह के दरबार में काफ़ी दिनों तक गवर्नर-जनरल नंगे पैर ही जाता था।

आज-कल राजा लोगों का जीवन एकदम सभ्य व सुसंस्कृत हो गया है। नौबतों की जगह रेडियोग्राम बजते हैं और मशालों की जगह बिजली के रॉड। जिरह-बख्तर की जगह बिलायती सूट ने ले ली, घोड़े और हाथियों की अपेक्षा कुत्तों को तरजीह दी जाती है। बैंकों से उधार भी लेते हैं और जीवन की चिरन्तनता में अपना विश्वास प्रकट करने के लिए वृद्धावस्था में विवाह भी करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय भाईचारा बढ़ाने के लिए वे अक्सर विदेश ही में रहते हैं। लखनऊ के कुछ नवाब तो एकदम प्रजातंत्र की प्रणाली में रँग गये हैं ; कुछ तो श्रमदान में भी विश्वास रखते हैं। अपने पूर्वजों के प्रति इन लोगों की बड़ी श्रद्धा है। हर पहली तारीख को तहसील से पाँच रुपए पेन्शन लेकर आते हैं। राजवंश का राज न रहा हो, पर वंश तो सही-सलामत है।

राजा और महाराजाओं ने बहुत समय ले लिया। अब कुछ बात हाथी व साँप की की जाए।

साँप

भारत में अनेक प्रकार के साँप पाये जाते हैं। कुछ साँपों को आस्तीन का साँप कहते हैं। कुछ ऐसे लोग भी हैं जो साँप को भी मार देते हैं और लाठी भी नहीं तोड़ते।

पुराने जमाने में साँपों में बड़ी शराफत होती थी। वे बड़े-बड़े काम करते थे। शेषनाग पृथ्वी का भार धारण करता था। हालांकि

उन दिनों पृथ्वी पर इतनी भारी-भारी इमारतें नहीं थीं और न इतने सारे महाद्वीपों का ही पता लगा था, पर फिर भी वजन काफी रहा होगा। विष्णु जी साँप पर सोते थे और शिव जी उन्हें गले में पहिनते थे। इस तरह के साँप आजकल नहीं होते।

हाथी

चार पैर, एक पूँछ, एक सूँड और पेट को मिला कर हाथी बनता है। इसके दाँत खाने के और होते हैं और दिखाने के और। इसकी सूँड आजकल तो जरूर भद्दी लगती है, पर पुराने दिनों में इसका बड़ा चलन था। सभ्य व सुसंस्कृत लोग भी इसकी सूँड को नाक के स्थान पर लगाने के लिए लालायित रहते थे। गणेश जी का चित्र तो आपने देखा होगा; वे बड़े पंडित व ज्ञानी पुरुष थे। राजाओं के समय में हाथी बड़े काम आता था। उस पर वे शिकार खेलते थे, राजा की सवारी भी उसी पर निकलती थी और उसी से अपराधियों को मृत्यु-दंड भी दिया जाता था।

पुराने जमाने में हाथी बड़े जिद्दी होते थे। एक बार एक हाथी की मगर से मुठभेड़ हो गई। मगर ने उसे पकड़ लिया। हाथी की जिद देखिए कि उसने अपने आपको उस मगरमच्छ के हवाले नहीं किया। बात यहाँ तक पहुँची कि विष्णु नाम के एक भगवान को बीच-बचाव करने के लिए आना पड़ा।

हाथी देखने में कोई खास सुन्दर नहीं होता। कालिदास ने उसकी उपमा बादल से या पहाड़ से दी है। भर्तृहरि को मदक्षीण हाथी पसंद थे। उसकी उपमा उन्होंने खराद पर चढ़ी मणि और शरदकालीन नदी से दी है। हाथी और साँप के बंधन को देखकर ही एक दिन उन्हें भाग्य की महानता पर आस्था हुई थी। मगर हाथी का जो मजाक विष्णु शर्मा ने किया है वह कहीं और नहीं मिलता। न जाने कितने हाथियों को चिड़ियों ने, मेंढकों ने मिल-मिल कर मार दिया। हाथी का साहित्य में

ऊँचा स्थान इस कारण भी है कि इसके कारण कितने ही कवियों का स्थान निश्चित किया गया है। मि० कीथ एक कवि के विषय में कहते हैं कि वे शायद काश्मीर निवासी थे क्योंकि उनकी कविता में हाथी का वर्णन नहीं है।

हाथी दो तरह के होते हैं—एक काला और दूसरा सफेद। पहिले सफ़ेद हाथी जापान में ही होते थे। आजादी के बाद, इनकी कमी पर योजना कमीशन ने ध्यान दिया। इन दिनों सफ़ेद हाथी हिन्दुस्तान में बहुतायत से पाया जाता है।

इतवार का दिन

इतवार का दिन

इतवार के बारे में कुछ कहने से पूर्व यह बताना जरूरी है कि वह सात दिन में एक बार आता है और एक बार में एक ही अदद आता है। मतलब यह कि उसके लिए आपको इंतजार करना पड़ता है और फिर यदि वह किसी तरह खराब हो जाए तो अफ़सोस होना जरूरी है।

मैं इतवार को बहुत पसंद करता हूँ; कभी-कभी तो ऐसा मालूम होता है कि जैसे मैं इतवार गुजारने के लिए ही बनाया गया हूँ। यों इतवार में कोई खास बात नहीं। जैसी और दिन सूरज़ और हवा वैसी ही उस दिन भी। बल्कि कभी-कभी तो इतवार के दिन सूरज और हवा और दिनों की अपेक्षा और ज्यादा खराब होते हैं। ऐसे इतवार कम नहीं जिनमें एक हफ्ता आसमान साफ और मौसम खुशनुमा रहने के बाद, खूब सर्दी या खूब गर्मी या लगातार बारिश होती है। मगर फिर भी इतवार के दिन में कुछ ऐसा जादू है कि कहा नहीं जा सकता।

मैं एक सरकारी कर्मचारी हूँ। रोज दफ्तर जाता हूँ। दफ्तर के दिनों का कार्यक्रम तो निश्चित-सा रहता है : डाक देखिए, मिलने वालों से मिलिए, तार पढ़िए, फाइलें देखिए और फिर कानून की पोथियाँ खोलिए जिनमें न जाने कितने शुद्धिपत्र रामायण के क्षेपकों की तरह चिपके रहते हैं। फिर टेलीफोन या चपरासी—गरज यह कि सारा दिन इसी तरह गुजर जाता है। पुराणों में माया के प्रपंचों का विवरण जिस विशदता से किया गया है उससे यह साफ़ सिद्ध होता है कि उनका लेखक किसी

सरकारी दफ्तर का कर्मचारी था। आर्य सभ्यता व संस्कृति के प्रेमी मेरी बात का बुरा न मानें —मेरी बात का यह अर्थ भी है कि अंग्रेजों के आने से हजारों वर्ष पूर्व भी हमारे यहाँ बड़े-बड़े दफ्तर थे—एक सुव्यवस्थित शासन-प्रणाली थी। हाँ, तो मैं दफ्तर वाले दिनों की चर्चा कर रहा था। जिस प्रकार इतिहास में तीन काल होते हैं—युद्ध से पहिला काल, युद्ध का काल व युद्धोत्तर काल; ठीक उसी प्रकार दफ्तरी व्यक्ति के दिन के भी तीन भाग होते हैं। एक तो दफ्तर जाने से पहिला काल जिसमें वह दफ्तर जाने की तैयारी करता है—शेव, पालिश, टूथ-ब्रश, कपड़ों के बटन, प्रेस और बाकी मेक-अप। इसके बाद दूसरा काल है दफ्तर का —दस से पाँच तक। इसका संक्षिप्त विवरण मैं ऊपर दे ही चुका हूँ। तीसरा समय है दफ्तरोत्तर काल। इस काल में जूते खोले जाते हैं, मेक-अप उतारा जाता है, देर से आने के बहाने दिए जाते हैं और फिर चाय के ताजे प्याले पर दफ्तर की कार्रवाइयों पर विचार किया जाता है। इन्हीं सब कारणों से मेरे जैसी स्थिति का व्यक्ति इतवार की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करता है। इतवार को कोई दफ्तर नहीं, कोई फ़ाइल व फ़ोन नहीं और खास बात यह कि कोई चपरासी नहीं। चपरासियों के बारे मे ज्यादा बात करना शायद ठीक न हो पर मैं इतना फिर भी बताना चाहूँगा कि सारी शासकीय प्रणाली में उनसे ज्यादा दिलचस्प व खतरनाक चीज और कोई नहीं।

चपरासियों की बड़ी किस्में हैं। बूढ़े चपरासी, जवान चपरासी पढ़े-लिखे या जाहिल चपरासी—गोरे या काले चपरासी वगैरा-वगैरा। मगर चपरासियों को भले और बुरे की श्रेणी में बाँटना मुश्किल पड़ता है। भला चपरासी जैसी चीज़ बड़ी दिक्कत से मिलती है। कहते हैं कभी किसी ने एक चिट्ठी किसी भले चपरासी के नाम लिखी थी और डाक-विभाग को भला चपरासी ढूँढने में कई साल लग गये थे। ये लोग सारे दिन खाली रहते हैं और इसी कारण इनके सिर में शैतान की कंपनी की लोकल ब्रांच हमेशा खुली रहती है। जब आप किसी गहन मामले

या मुकदमे में उलझे हों तो वे आराम से बाहर बेंच पर बैठ कर शेरछाप बीड़ी पीते हैं; सुरती खाते हैं और तंबाकू सूँघते हैं। जब आप पर डाँट पड़ती है तो वे लोग दाँत निपोर कर हँसते हैं। इनकी खुशमिजाजी खास तौर पर देखने लायक तब होती है जब आपकी स्टेनोग्राफर कोई लड़की हो। तब तो ये लोग ऐनक उतार कर, पगड़ी ढीली कर इस तरह टीका-टिप्पणी करेंगे जिसकी हद नहीं। इस बात का तो छिपाना ही क्या कि कुछ चपरासी अफसरों की गैरहाजिरी में उनकी कुर्सी पर बैठ, कूलर या पंखे के मजे लेते हैं, साहब के गिलास में पानी पीते हैं और शहर के हर सिनेमा को टेलीफोन करते हैं।

हाँ, तो मैं कह रहा था कि इन्हीं कारणों से मैं इतवार के दिन का बड़ा इंतजार करता हूँ। यह समझिए कि बाकी छः दिन उसी के इंतजार में गुजर जाते हैं। इतवार के लिए प्रोग्राम मंगल से ही बनने लगते हैं। पिक्चर, पिकनिक और जाने क्या-क्या! वैसे मैंने अक्सर देखा है कि ये प्रोग्राम पूरे कभी नहीं होते। अक्सर ऐसा होता है कि जिस इतवार को मैं चाहता हूँ कि खूब क्रियाशील रहूँ, उस इतवार को दिन भर हाथ-पर-हाथ रखे बैठना पड़ता है। और जिस दिन मैं आराम से बरामदे में बैठकर सिगरेट पीने का प्रोग्राम बनाता हूँ उस दिन की न पूछिए। ऐसा लगता है कि आज की सभ्यता व संस्कृति की एक बड़ी समस्या यह है कि लोग अपने इतवार बिताने का प्रोग्राम एक-दूसरे से पहिले सलाह करके नहीं बनाते। जब एक व्यक्ति अपना इतवार शांति व आराम से गुजारना चाहता है, तभी दूसरे लोग मिलने-जुलने का प्रोग्राम रखते हैं। यकीन न हो तो पिछले इतवार का जिक्र मैं आपको सुनाता हूँ।

२

इस इतवार के दिन मेरा कोई विशेष प्रोग्राम न था। मामूली-सी बातें एजेंडा पर थीं और समझता था कि उनसे किसी को ईर्ष्या होना असंभव था। सोचा था पहिले घूमने जाऊँगा, फिर मालिश करूँगा, फिर खूब नहाऊँगा. . . शावर खोल कर —और फिर खाना खाकर

सोऊँगा। तीसरे पहर कुछ लिखूँगा, फिर स्टेशन पर घूमने जाऊँगा और प्लेटफार्म पर भुनी मूँगफलियाँ खाऊँगा और रात को आइसक्रीम जमेगी। मौका लगा तो सिनेमा भी चलेंगे। अगर सिनेमा न गए तो रेडियो ग्रामोफोन के रिकार्ड सुनेंगे। मगर तकदीर में जो प्रोग्राम लिखा था वह काफी भिन्न था। पहिले तो दफ्तर में ही देर हो गई। दफ्तर के जरूरी काम शनिश्चर को ही अक्सर निपटाए जाते हैं और वे भी अगर ज्यादा जरूरी हों तो चार बजे के बाद। कोई सात बजे घर पहुँचा। खाना खाने के बाद कल के बारे में अपना प्रोग्राम श्रीमती जी को सुनाया। उन्हें कोई विशेष मतभेद नहीं था सिवाय इसके कि रात को आइसक्रीम खाना गले के लिए ठीक नहीं है और सुबह का घूमना एकदम बेकार की चीज है। स्टेशन पर बिना मतलब जाना और प्लेटफार्म पर चहलकदमी करना शोहदों का काम है और हम लोग शोहदे नहीं हैं। बातचीत के दौरान में जो एक खास बात उन्होंने बताई वह यह थी कि हम लोग हफ्ता भर काम करने की आदत होने के कारण छुट्टी बिताना ही नहीं जानते। खाली वक्त का प्रयोग करने के लिए औरतों से परामर्श करना जरूरी है क्योंकि खाली वक्त बिताने की कला में वे स्पेशलिस्ट होती हैं। गरज यह कि हमारा पूरा प्रोग्राम पूरी तरह बदला गया। घूमने की जगह तय हुआ कि हम लोग अपने साले साहब के यहाँ जाएँगे जो कि एक दफ्तर के बाबू हैं। दोपहर का खाना वहीं खाएँगे। रही शाम को लिखने की बात—वैसे भी हमारा लिखा कम ही छपता है अतः यदि हम अपनी सरस्वती को एक दिन और कुंठित रक्खें तो शायद साहित्य को कोई स्थायी क्षति न पहुँचे। रहा सिनेमा—वह कल पर छोड़ दिया गया।

सुबह हमें और दिनों से भी जल्दी उठाया गया। तैयार होना था और बस के जरिए अपने साले साहब के यहाँ पहुँचना था क्योंकि उनका घर शहर के दूसरे सिरे पर है। खैर, मैंने शेव किया और एक अदद पैंट व बुशर्ट में घुसने जा ही रहा था कि श्रीमती जी ने रिमार्क किया कि बाल बढ़े हैं।

"क्या बढ़े हैं" मैंने बात पक्की करने के लिए पूछा।

"बाल बढ़े हैं"

"कहां" मैंने उत्सुकतावश कहा।

"सिर पर"

"किसके सिर पर" मैंने कहा क्योंकि बाल उनके सिर पर भी कम नहीं थे।

"आपके सिर पर" उन्होंने गंभीरता से कहा।

अब तो पूरी स्थिति असंदिग्ध रूप से सामने रख दी गई थी और इसके सिवा और कोई चारा न था कि स्वीकार कर लिया जाए कि मेरे सर पर बाल बढ़े हैं। यह भी निष्कर्ष आसानी से निकल आया कि जब तक वे कट नहीं जाएँगे तब तक बढ़े ही रहेंगे। खैर नाई के नाम समन जारी किया गया और हम सारे काम छोड़ हज्जाम के इंतजार में बैठ गए।

कवियों का कहना है कि इंतजार में बड़ा मजा है। मेरे विचार से यह बात उन्होंने नाई लोगों के इंतजार के लिए न कही होगी। सच मानिए नाई का इंतजार करना कठिन काम है। बात यह है कि जिस इंतजार का जिक्र कवियों ने किया है, वह आप नहा-धोकर कपड़े पहिन, आराम से कर सकते हैं पर नाई का इंतजार गंदे कपड़ों में या नंगे रह कर ही करना पड़ता है। फिर यह ऐसा इंतजार नहीं कि आप किसी पार्क में देवदार के पेड़ के पीछे छिपकर करें जहाँ चाँदनी की किरणें आपका मन बहलाती रहें। यह तो आपको अपने छोटे फ्लैट के बरामदे में ही घूम-घूम कर करना पड़ता है। बार-बार सोचते हैं कि अब नहाएँ—अब शावर के नीचे खड़े हों—अब रेशमी बुशर्ट में गला डालें और इधर वह नापित महाराज हैं कि सारी ठकुराई दिखाने के लिए आज ही सन्नद्ध हैं। विष्णु शर्मा ने ठीक ही कहा था कि मनुष्यों में नाई धूर्त होता है। थोड़ी देर और होने पर आपको नाई के माँ-बाप वगैरा में दिलचस्पी होने लगती है और उनकी शान के खिलाफ कुछ अलफ़ाज निकलने लगते हैं।

खैर; मैं ये सारी स्थितियाँ कई बार पार कर चुका था जब ठाकुर साहब की सवारी आई। वहीं से मोतियों की लड़ी बिखेरते हुए बोले—"सरकार माफ करना; आज है इतवार का दिन। कई यजमान चले आए—क्या करता। खैर अब सारी कसर निकाल दूँगा।" इतना कहने के बाद उन्होंने अपनी क्रिया संपन्न करनी प्रारम्भ कर दी। पता नहीं बाल काटना चौंसठ कलाओं में है या नहीं। यदि नहीं है तो होना चाहिये। और यह कला एक ऊँचे स्तर पर तब प्रतिष्ठित होती है जब कि नाई को आप थोड़ा-बहुत जानते हों। फिर तो बाल काटने के साथ-साथ अन्य ललित कलाओं का भी रसास्वादन होता है। बात यह है कि अभी तक ऐसा कोई नाई नहीं पैदा हुआ जो बाल काटते समय चुप रह सके। कहते हैं उसकी वाणी की गति उसकी कैंची को प्रेरणा देती है। यदि नाई से आप अपरिचित हों तो आप सुनी-अनसुनी कर सकते हैं और सम्भव है कि वह भी आपको बहरा समझ कर छोड़ दे पर यदि आप उससे परिचित हैं तब बचने का कोई रास्ता नहीं। और फिर ये ठाकुर! इनके दो बीवियाँ हैं, दो किता मकान है, चार किता जमीन है, दलाली ये करते हैं; इनकी बातों का कोई अंत नहीं। अपनी दोनों बीवियों की चर्चा करते-करते उन्हें शाम हो सकती है। पहिली बीवी? सरकार एकदम गऊ है पर जरा उमर की जास्ती है। बचपन ही में सरकार फेरे फिर गए। दूसरी बीवी? हजूर बड़ी सीधी है और बड़ी होशियार, मगर सरकार उमर की कुछ कम है। और जब दलाली की बातें शुरू होती हैं तब तो हँसी रोकना मुश्किल हो जाता है। बीच में ही कैंची-कंघा रोक कर कहेंगे—"सरकार एक ठो मोटर बिक रही है—जस्टिस भार्गव की है। चार हजार माँग रहे हैं पर हजूर मैं कुछ और छुड़वा दूँगा।" मैं कहूँगा कि भाई इतने रुपए कहाँ? इस पर वे एक लंबी आह भरेंगे—"ठीक है सरकार। मँहगाई ही इतनी हो गई है। अच्छा तो सरकार एक गाय खरीद लीजिए—एक तार घर के बाबू बेच रहे हैं। दस-पाँच रुपए छुड़वाना मेरे हाथ की बात है...।" इसी तरह का लल्लू लाल जी का प्रेमसागर उस दिन भी चला और किसी तरह एक घंटे के

बाद सिटिंग पूरी हुई। मैं 'खुद माइनस थोड़े-से बाल' बाथरूम में भरती हुआ, कपड़े पहिने और बस पकड़ने के लिए हम लोग अड्डे पर पहुँचे।

३

बस के अड्डे के बारे में खास बात यह है कि वहाँ सिवाय बस के और सारी चीजें मिलती हैं जैसे मूंगफली, सोडा, अखबार, पालिश वाला, गिरह-कट, पुलिसमैन और कभी-कभी एकाध ट्रैफिक-मजिस्ट्रेट भी। ये सारी चीजें काफी आसानी से मिलती हैं; हाँ अलबत्ता बस जरूर मुश्किल से मिलती है। इस बात का पता रिक्शे वालों और इक्के वालों को भी होता है और इसी वजह से जहाँ बस-स्टैंड होता है, वहाँ इन चीजों का भी स्टैंड होता है। हम लोग भी कई घंटे बस का इंतजार करते रहे और उसके बाद बजरिए इक्के के जनाबे आला साले साहब बहादुर के बँगले की ओर रवाना हुए।

हमारे साले साहब निहायत ही भले व्यक्ति हैं। यदि कोई कमी है तो सिर्फ एक और वह यह कि कभी घर पर नहीं मिलते। घर वालों को शिकायत है कि दफ्तर में रहते हैं और दफ्तर वालों को यह कि वे घर से नहीं निकलते। असलियत यह है कि वे इन दोनों में से किसी जगह नहीं रहते। वे रहते हैं घर और दफ्तर के बीच में—मेरा मतलब पुरानी किताबों की उस दूकान से है जो दफ्तर के रास्ते में घंटाघर के पास है। जहाँ हजरत को वक्त मिला कि लगे चश्मा लगा कर झाँकने किसी पुरानी जिल्द में। दोस्तों का खयाल है कि यदि वे दीमक वगैरा कोई वैसी चीज होते तो जीवन में ज्यादा सुखी और सफल रहते क्योंकि उस स्थिति में पुस्तकों से उनका संपर्क बिना बाधा के घनिष्ठ व निरंतर रह सकता था। पर दुर्भाग्य यह है कि वे हैं आदमी जिनके परिवार होता है, बहिनें होती हैं, जो कि इतवार को घर आती हैं।

हम लोगों ने कुछ देर तो इन्तजार किया पर जब साले साहब के उस भूमि पर प्रकट होने की कोई आशा न रही तो हमने चंद बच्चों के छोटे-

री दस्ते के साथ उस किताबों की दूकान पर घेरा डालने का निश्चय किया। अभियान में आशातीत सफलता मिली; हजरत ने बचने की बहुत कोशिश की मगर पकडे गए। युद्ध का बंदी बनाकर हम लोग उन्हें घर की ओर ले चले। रास्ते में बातचीत भी उनसे वैसी ही हुई जैसी कि उम्मीद थी। बात दर असल यह है कि वे दिल के बहुत साफ है—उन लोगों में से नहीं जो मन में तो सोचते रहें कि आपके कीड़े पडें, और बाहर से कहें 'खुदा आपको सेहत दे। बाल-बच्चों को सही-सलामत रक्खे।' ये साहब तो मन, वाणी व कर्म में अन्तर नहीं रखते। कुछ देर चुप रहने के बाद बोले, "आ गए आज भी वक्त खराब करने! यार, इतवार को तो छोड़ दिया करो।" इसी तरह की एक-दो और संधि वार्ता हुई। तब तक हमारा रिसाला जीत की खुशी मनाता घर के किले तक पहुँच चुका था।

खाना हमने वहीं खाया। कुछ तो हमारी कम खाने की आदत ही है और कुछ खाना भी कम पड़ गया। हम लोगों के पहुँचने की उन्हें कोई पहिले से खबर न थी ओर खाना हमारे जाने तक बन चुका था। खाना खाने के बाद बीबी और उनकी भाभी तो ताश खेलने में जुट गई, बच्चों ने अपना कोई और प्रोग्राम बनाया और साले साहब मूढ़े पर बैठ कर हमें किसी हाल ही में पढ़ी पुरानी किताब के आधार पर अकबर की हिन्दू-नीति पर विस्तृत लेक्चर देने लगे। खाना उन्होंने काफ़ी खाया था और आँखें उनकी मुँदी जा रही थीं। पहिले काफ़ी देर तक तो वे कहते रहे कि अकबर हिन्दुस्तान का बादशाह था और मानसिंह उसके सेनापति थे और हिन्दुओं के प्रति उसकी नीति उदार थी। कोई पाँच मिनट बाद उन्होंने इतिहास का क्रम कुछ बदला और कहना शुरू किया कि हिन्दुस्तान अकबर का बादशाह था और हिन्दू उसकी नीति के प्रति उदार थे और सेना मानसिंह की सेनापति थी। फिर कुछ देर बाद इतिहास में और भारी परिवर्तन किए गए। राजा मानसिंह हिन्दुस्तान के बादशाह हो गए और अकबर उसके सेनापति बनाये गये। और इसके बाद वे अपने उन खर्राटों को भरने लगे जिन्हें वे एक सेकेंड में तीन की गति पर घंटों लगातार भर सकते है। इधर

हमारी जो दशा हो रही थी, उसका अनुमान आप लगा ही सकते हैं। रह-रह कर कल का बनाया अपना प्रोग्राम याद आता रहा। किसी तरह मन को धीरज बँधाया और सोचा कि अगर अब भी जान बच जाए तो आधे दिन का प्रयोग अपनी तबीयत के अनुसार हो सकता है। बुद्धिमान लोग सर्वनाश की स्थिति में आधे को छोड़ देते हैं। बीवी को आवाज दी और जूते पहिनने शुरू किए। उधर मालूम हुआ कि एक अरसे के बाद वे बाजी जीती हैं और इस कारण निकट भविष्य में इस घर से उनके विदा लेने की कोई संभावना नहीं है। किसी तरह थोड़ा वक्त और काटा। इसके बाद जब हाथ मिला कर, बच्चों की पीठ थपथपा कर, नमस्ते कर, टाटा और बाइ बाइ के साथ चलने के लिए बाहर निकले तो देखा कि बारिश हो रही है।

४

बारिश काफी जोर-शोर से पड़ रही थी। घुमड़-घुमड़ कर बादल आ रहे थे और हवा ठंडी थी। किसी और समय यही वर्षा हमें बड़ी अच्छी लगती। उस समय हमें मेघदूत या जयदेव की कोई पंक्ति भी याद आ जाती। पर आज ?—आज कुछ नहीं, सिर्फ यही खयाल आता रहा कि वर्षा के दिन को दुर्दिन क्यों कहते हैं। खैर कोई चार घंटे तक यही कार्यक्रम चलता रहा। बारिश चलती रही और चलती रही। पहिले एक घटा आई, बरसी और चली गई। फिर दूसरी घटा आई, बरसी और चली गई। तीसरी घटा ने भी वही किया और एक बार परंपरा निश्चित हो जाने पर, उसका अनुसरण और बाकी घटाओं ने भी किया। मेरे खयाल से घटायें काफी थीं और हालाँकि ज्यादातर घटाओं को एक ही बार अवसर दिया गया पर फिर भी कोई छः बजे तक कार्य क्रम चलता रहा। जैसा कि कवि-सम्मेलनों में होता है, यहाँ भी अच्छी-अच्छी घटायें बाद के लिए ही रक्खी गई थीं। खूब बारिश हुई। कुछ घटाओं को एक से अधिक भी अवसर मिला और कोई सात बजे हम लोग अपने हैड क्वार्टर्स पर पहुँचे।

घर पहुँचने पर पता लगा कि कुछ लोग घर में हैं और वे हमारे अलावा दूसरे हैं। कुछ बच्चों के रोने की आवाज भी आई। हमारी बीवी की बड़ी बहिन शायद बाराबंकी से आई थीं।

गरज यह कि मैं आपको अपना दुख-दर्द सुना कर ज्यादा तंग नहीं करना चाहता। वैसे भी मेरी आदत अपनी परेशानियाँ अपने तक ही रखने की है। उस रात को मैं नौकर की खाट पर सोया क्योंकि सारे पलँग और चारपाइयाँ मेहमानों को उनके आने की खुशी में बिस्तर बिछा-बिछा कर पेश कर दी गई थीं। मुझे ओढ़ने के लिए मिला एक पुराना कंबल और बिछाने को एक पुरानी दरी। रात भर मैं काफी आराम के साथ लेटा रहा और मीर तकी 'मीर' का वह शेर याद करता रहा—

गरचे मैंने बहुतों को मसल मारा
पर खटमलों ने मुझे मिल मारा....

एक (अ) साहित्यिक प्रयोग

एक (अ) साहित्यिक प्रयोग

अभी पिछले दिनों एक प्रसिद्ध हिन्दी सचित्र साप्ताहिक में छपा था. . ."अगले अंक के आकर्षण. . .श्री. . .की कहानियाँ और श्री. . .के कविता में नये प्रयोग. . ."

आजकल प्रयोग वैज्ञानिक अनुसंधानशाला में ही नहीं होते, वे कहीं ज्यादा नंबर में हिन्दी कवियों के अध्ययन-कक्ष में होते हैं। जमाना ही प्रयोगों का है। जैसे पहिले आम जनता तीन भागों में विभाजित होती थी—रोगी, भोगी और योगी अब वहाँ एक और जाति बढ़ गई है—प्रयोगी।

प्रयोगों की यह परम्परा केवल काव्य तक ही सीमित रही हो, यह नहीं। अभी-अभी मैं एक प्रसिद्ध कवि का काव्य पढ़ रहा था जो हाल ही में छपा है। पहिले पृष्ठ पर लिखा है ". . .श्रद्धेय श्री. . .को।" ठीक उससे अगले पृष्ठ पर लिखा है. . ."प्रिय मित्र कविवर. . .को सप्रेम भेंट।" एक किताब और दो प्रसिद्ध व्यक्तियों को भेंट। क्या प्रयोग है समर्पण की दिशा में! यदि समर्पण के दोनों पृष्ठों को एक साथ पढ़ा जाए तो ऐसा लगता है जैसे कि "श्रद्धेय श्री. . ." को ही "प्रिय मित्र कविवर. . ." को सप्रेम भेंट किया जा रहा है। ठीक इसी तरह दूसरे एक मित्र ने हिन्दी का एक काफ़ी लोकप्रिय उपन्यास दिखाया जो सामरसैट मॉम की एक प्रसिद्ध पुस्तक पर एकदम आधारित था। पात्रों के व स्थानों के नाम बदल कर पुस्तक का वातावरण कितना बदला जा सकता है—इस दृष्टिकोण से यह पुस्तक सुन्दर और सफल प्रयोग है। एक तीसरे लोकप्रिय लेखक ने अपनी एक पुस्तक का दूसरा संस्करण दूसरे नाम से छपाया है। यह भी प्रयोग

है। लिखी और छपी पुस्तकों में एक नाम और बढ़ गया हालाँकि किताब एक ही लिखी। आप दोनों किताबें पढ़कर ये ईमानदारी से कह सकते हैं कि दोनों उपन्यासों में एक-सा ही आनन्द आया। मेरे एक और मित्र हैं जो किसी और के नाम से अपनी रचनायें भेजते हैं जैसा कि संस्कृत के कवि करते थे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रयोग तो प्रसिद्ध ही है कि उन्होंने अपनी कुछ कवितायें भानुसिंह कवि के नाम से 'प्रवासी' में छपने को दीं। एक टिप्पणी में बताया गया कि भानुसिंह एक प्राचीन कवि थे—चंडिदास के समकालीन या उससे भी पुरातन। और कमाल देखिये कि भानु सिंह पर एक साहब ने थीसिस लिखा और डाक्टरेट ले ली जब कि भानुसिंह नाम का कोई कवि था ही नहीं और सारी कवितायें रवीन्द्रनाथ ठाकुर की खुद की लिखी हुई थीं। उस थीसिस में भानुसिंह के जन्म, मरण, स्थान इत्यादि सभी बातों पर 'नानापुराणनिगमागमसम्मत' मत प्रकट किया गया था। टैगोर ने इस घटना का वर्णन बड़े मजे से किया है।

मगर ये सारे प्रयोग उस प्रयोग के सामने फीके पड़ जाते हैं जो मेरे मित्र उल्फ़तराय ने किया। आप जानते हैं वह दास्तान?

अरे, माफ कीजिए, आप तो यह भी नहीं जानते कि उल्फ़तराय कौन हैं। मैं सारी बात शुरू से ही शुरू करता हूँ।

२

यदि आप देहरादून में राजपुरा रोड पर दून गेस्ट-हाउस से आगे चलें तो आपको एक बोर्ड एक कोठी पर लगा दिखाई देगा जिस पर लिखा है 'श्री उल्फ़तराय खन्ना, एम० ए०, एल०-एल० बी०' जो सज्जन इस मकान के अन्दर रहते हैं उनका नाम उल्फ़तराय है। मेरे साथ बी० ए० में पढ़ते थे या यूँ कहिए कि उनके साथ बी० ए० में मैं पढ़ता था। मैं उन सौभाग्य-शाली छः पीढ़ियों में से था जो उनके साथ बी० ए० में पढ़ चुकी थीं। उन्होंने सातवीं दफ़ा में बी० ए० पास किया और चार साल में लॉ किया। कानून उन्होंने नोट्स पढ़ कर पास किया और नोट्स भी वे सेकेण्डहैण्ड

ही खरीदते थे क्योंकि उनमें जरूरी-जरूरी स्थलों पर निशान लगे होते थे। उल्फ़तराय सिवाय पढ़ने के और सारे काम करते थे। यूनियन के इलेक्शन लड़ना और लड़वाना, पार्टियाँ और मीटिंग अरेंज करवाना, मैच तय करना—हर तरह के मैच—क्रिकेट का, हाकी का, ब्रिज का, लड़के और लड़कियों का, और मस्ती से जिन्दगी काटना। हम और वह एक ही होस्टल में रहते थे। सारे कमरे में सिर्फ़ दस-बीस पुस्तकें थीं; कुछ बालजक की—कुछ 'यौन विज्ञान', 'रंगीन रातें' या इसी तरह की। माया, मनोहर कहानियाँ और जेबी जासूस के नियमित पाठक; एक बड़ी तस्वीर राजकपूर और नर्गिस की उनके कमरे की सामने की दीवार को सजाती। अगर कमरा खुला होता और आप दस बजे के बाद दिन में जाते तो आप खन्ना साहब को तख्त पर नींद से आँख मलते देख सकते थे। लम्बा कद, सोने जैसा उजला जिस्म, हलकी-हलकी मूँछें जिन पर हर हफ्ते नये प्रयोग किये जाते थे और लाइनदार पाजामा और सफेद रेशमी कुरता। गले में काला तागा पड़ा हुआ। इसके बाद एक हाथ में लोटा लेते और दूसरे में एक ताजा गुलाब का फूल और फिर बाथरूम जाते। होस्टल के फर्स्टइयर के लड़के उन्हें हौव्वा समझते थे। किसी बेचारे की बीवी की चिट्ठी आई तो उसे खोलकर नोटिस-बोर्ड पर लगवा दिया। किसी पूरब के जिले के गरीब लड़के से उसी की माँ को चिट्ठी लिखवा दी..."माई डियरेस्ट डार्लिङ्ग" और बाद में "आई एम यौर बिलवेड।" सारे दिन यही तमाशा रहता था। मेस में एक ज्यादा खाने वाले लड़के को पकड़ लिया और खिला रहे हैं जबरदस्ती उसे चपाती पर चपाती और चिल्ला रहे हैं सारे डाइनिंग हाल में..."ट्वन्टी थ्री नाट आउट, ट्वन्टी एट नाट आउट...।" एक दिन तो उन्होंने उस बेवकूफ को इतना खिलाया कि डाक्टर बुलाना पड़ा।

हाँ, तो मैं कह रहा था कि अगर इनका कमरा खुला होता तो आप क्या देखते। अगर कमरा बन्द होता तो एक दरवाजे पर बोर्ड नजर आता। हालाँकि खन्ना साहब थे एक छात्र ही, पर बोर्ड पर लिखा था—"उल्फ़त-

राय खन्ना—लेक्चरर इलाहाबाद यूनीवर्सिटी" और दूसरे दरवाजे पर एक खोपड़ी और दो हड्डियों की आकृति के नीचे लिखा होता :

DANGER

Visiting hours 5 p. m. to 7 p. m.
Bore at other hours at your own risk.

और शाम को उनके कमरे में वह कहकहे लगते, वह हँसी होती कि रात के नौ बजे तक पढ़ना हराम हो जाता।

खैर, एक दिन ऐसा हुआ कि जैसा कि दस्तूर था, खन्ना साहब ने एक फर्स्टइयर के लड़के का कमरा खोला—उसकी गैरहाजिरी में। उसका लोटा गायब किया। सिर के तेल की शीशी में फाउन्टेनपेन की इंक मिला दी। एक जोड़ी चप्पल दराज में रख दी, किताबें फाड़ दीं वगैरह-वगैरह। जब वह लड़का आया—उसका नाम अवस्थी था—तो वह रोने लगा। बेचारा गाजीपुर का था और उसके बाप बचपन ही में मर गये थे। माँ ने पीसना पीस कर उसे इन्टर कराया था। जाने किस तरह लड़के ने गर्मियों की छुट्टी में ट्यूशन कर दाखिले के लायक पैसे जमा किये थे और विश्व-विद्यालय में आने का स्वप्न पूरा किया था। खैर जब उसने अपनी किताबें फटी देखीं तो वह बस. . .रो ही पड़ा. . .

रोने की आवाज खन्ना साहब के कानों तक पहुँची। पहिले तो वे हँसे, फिर खूब हँसे—फिर उसे बुलवाया और उसके सामने हँसे। पर जब लड़के का रोना फिर भी बन्द न हुआ तो वे कुछ थोड़ा सा परेशान हुए। पता नहीं उन्हें क्या सूझा, उन्होंने उसे रिक्शे पर बिठाया और बाजार किताब लेने चले गये। उस दिन से वे दोनों मित्र हो गये।

२

खन्ना और अवस्थी दोनों थे भी बी० ए० के छात्र और इसीलिए उनकी खूब निभी। खन्ना को रुपये-पैसे की चिन्ता थी ही नहीं और अवस्थी

पर वे आसानी से थोड़ा-बहुत खर्च कर सकते थे। कभी सिनेमा ले गये... कभी काफी-हाउस...कभी टांडाफाल का पिकनिक। हाँ, टांडाफाल का पिकनिक मैं भी गया था। लड़कों ने पूरी बस की। सारे रास्ते खन्ना साहब एक जनानी साड़ी पहिन कर पीछे बैठे रहे और लड़कों को हँसाते रहे। और मजा जब आया जब कि हम लोग वापसी में कहीं बस खराब होने की वजह से रुक गये और खन्ना साहब की सलाह या हुकुम के अनुसार सड़क के बीचों बीच सोये। रात को कोई सज्जन मुँह में बड़ा-सा सिगार लिए बड़ी लम्बी कार से उतरे और पूछने लगे कि ये क्या बदतमीजी है? तो खन्ना साहब झट से पूरब की भाषा में—जो मेस के नौकर दिन-रात बोलते थे—उनसे बतियाने लगे कि उन्हें इन गुण्डों ने यानी और लड़कों ने पकड़ लिया है और छेड़खानी कर रहे हैं...और दुहाई है आपकी...बचाइए मुझ अबला को...और लगे चिपटने उन साहब से। बड़ी मुश्किल से बात बनी उस वक्त।

खैर, खन्ना साहब और अवस्थी का साथ खूब चला। विषम स्वभाव वालों में दोस्ती खूब निभती है। इधर अवस्थी को कुछ लिखने का शौक था। हिन्दी का छात्र था और लिखना स्वाभाविक था। प्रयाग विश्वविद्यालय में जितने छात्र बी० ए० में हिन्दी लेते हैं वे सब हिन्दी के लेखक या कवि या आलोचक या नाट्यशास्त्री—यानी कि कुछ-न-कुछ होते जरूर हैं। अवस्थी भी लिखता था पर उसमें खासियत यह थी कि वह अच्छा लिखता था। कहते थे कि उसका एक उपन्यास तो पूरा हो चुका था पर उसे छापने के लिये कोई प्रकाशक तैयार नहीं था और खुद उसके पास पैसे नहीं थे।

दिन बीतते चले गये क्योंकि इसके अलावा वे बेचारे कर ही क्या सकते हैं। मैं एम० ए० में आ गया। क्लास में लड़कियाँ आ गई और खन्ना साहब ने होस्टल छोड़ दिया। वे सिविल लाइन्स चले गये। मैं उन्हें जरूर भूल जाता अगर वे उस दिन मुझे न पकड़ लेते। एक रसीद-बुक हाथ में थी और एक पोस्टर दूसरे हाथ में :

"कर्तार सिंह की स्थिति गम्भीर : टी० बी० से पीड़ित

एक गरीब छात्र गरीबी के कारण दम तोड़ रहा है—"

और इसके बाद पोस्टर में बताया गया था कि कर्तार सिंह किस तरह रिक्शा खींच-खींच कर पढ़ता रहा और उसे टी० बी० हो गई। कैसे बिना इलाज के उसकी हालत खराब होती चली गई वगैरह-वगैरह। मैंने भी एक रुपया चंदा दिया और फिर हम लोग लाइब्रेरी के बाहर पोर्टिको में गप मारने लगे। खन्ना ने बताया कि दो हजार रुपया तो कर्तार सिंह के लिये जमा हो गया है और तीन हजार उसका लक्ष्य है। हाईकोर्ट के जजों, सरकारी अफसरों और व्यापारी वर्ग ने भी काफी सहायता की है।

४

अरसा गुजर गया। पिछले महीने जब मैं मसूरी गया तो देहरादून में खन्ना के पास भी गया। अब उन्होंने मूँछें साफ करा दी हैं। सोना-खाना भी वक्त पर होता है। थोड़ी-बहुत प्रैक्टिस भी चलती है। कुछ कोठियाँ हैं मसूरी में, उनका किराया आता है।

बातचीत के सिलसिले में अवस्थी का जिक्र आया। पता चला कि वह हालैन्ड स्कालरशिप पर गया है। शायद कुछ मदद खन्ना ने भी की हो। हम अवस्थी की चर्चा शुरू कर ही रहे थे कि बाहर बैंड बजा और अनाथालय के कुछ लोग चंदा माँगने अन्दर आये।

"देखिए महाराज ! मैं आपको ज्यादा वक्त नहीं दे सकता" खन्ना ने कहा—"अपनी स्पीच जेब में रखिये, सर्दी में काम आयेगी और चंदा लेकर आगे बढ़िए। मुंशी जी—ओ मुंशी जी, इन्हें दे देना पाँच रुपये"—फिर मुझसे मुखातिब होकर कहा, "यार धंधा बना रक्खा है कुछ ने इसी तरह पेट पालने का. . .अभी कल पता चला कि मिसेज शांता को धोखा दिया किसी धार्मिक संस्था वालों ने. . ."

मैं बीच में बोला—"यार सुनो क्या हुआ उस सिख लड़के का. . . क्या नाम था उसका. . .हाँ, जिसके लिये तुम चंदा माँगते थे ?"

"अरे वह! लीव दैट माई बॉय। अरे वह तो कुछ और ही धंधा था। तुम्हें पता नहीं। यार क्या दिन थे वे भी। बात यह थी वत्स, कि पापा ने जो रुपया भेजा था वो तो हम पहिले ही उड़ा चुके थे। हम थे भाई जान नंगे। उधर अवस्थी का उपन्यास छपना था। कर्तार सिंह था नाम उस लड़के का। वह उस उपन्यास का हीरो था। वह बीमार रहता था; शायद पाँचवें अध्याय में उसकी मृत्यु भी हो गई थी। हाँ यार, वह स्कीम बुरी नहीं रही, कोई तीन हजार हो गये थे और किताब छपी। सजिल्द तीन रुपये की थी और अजिल्द दो रुपये की। कुछ कापियाँ मेरे पास हैं; देखना किसी वक्त..."

और मैं खिलखिला कर हँस पड़ा।

वकील साहब के ख़त

वकील साहब के खत

मेरे मित्रों में अनेक वकील हैं। कुछ छोटी अदालतों में प्रेक्टिस करते हैं और कुछ हाईकोर्ट में। इनमें से कुछ को मैं इसलिए जानता हूँ कि वे मेरे साथ पढ़ते थे और पवनकुमार इसी श्रेणी में आते हैं। पहिले उन्होंने बी० ए० किया तीसरे दर्जे में; एम० ए० किया, एल० टी० की, फिर कोई डिप्लोमा किसी विदेशी भाषा में लिया और फिर लॉ ज्वाइन किया। कानून में जाकर उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मेले में खोए बच्चे को सेवा समिति का कैम्प मिल गया हो। वह दिलचस्पी हुई जो बचपन में हम लोगों को सर्कस से थी। कहाँ तो वे क्लास में आते ही न थे—प्राक्सी से ही काम चलता था—और कहाँ अब वे दस मिनट पहिले ही कक्षा में जा विराजते। जहाँ और विषयों के प्रोफेसर 'पुच्छ विशाणहीन मृग' की श्रेणी में आते थे, कानून के अध्यापक ज्ञान व अध्यवसाय के अवतार हो गये।

मैं उनके साथ पढ़ता तो न था पर क्योंकि उनका कमरा छात्रावास में मेरे कमरे के पास था, अक्सर मैं उनके यहाँ चला जाता था। छात्रावास में सबसे अधिक सीनियर होने के नाते, उत्सवों वगैरा का इन्तजाम भी वही करते थे और इस कारण भी हम लोगों का उनके कमरे में आना-जाना प्राय: होता रहता था। हम लोगों ने देखा कि पवनकुमार जी अब दिन प्रतिदिन बार-एट् लॉ होते जा रहे हैं। कमरे में देश के बड़े-बड़े कानून-वेत्ताओं के फोटो टँगने लगे, मेज पर मुल्ला व अन्य जूरिस्टों की किताबें सजने लगीं और देखते-देखते वे कितनी ही कानून सम्बन्धी सोसाइटियों

के सदस्य भी हो गये। छात्रावास में भी उन्होंने एक वक्तृता दी जिसका विषय था 'जीवन में कानून का महत्व।'

लॉ के द्वितीय वर्ष में पदार्पण करते-करते पवनकुमार जी का हुलिया ही बदल गया। अब तो वे बराबर वकीलों की ही बात करते. . .वल. . . वल. . .क्या पेशा है ! . . .दी मोस्ट लर्नेड प्रोफेशन ! . . .चाहो तो किसी को फाँसी के तख्ते पर चढ़वा दो, चाहो तो किसी को उतरवा दो. . .! हम लोग अगर कभी किसी प्रसिद्ध विचारक या नेता की चर्चा छेड़ते तो वे तुरंत कहते. . ."वह जरूर पहिले वकील रहा होगा। वही तो एक पेशा है जिसमें मानवता की महानता के दर्शन होते हैं।" बातचीत ही नहीं वरन् उनके रहन-सहन में भी वकालत का असर आ गया। बात-बात पर कानून की दलील दी जाती। अगर मेस में नौकरों का कोई झगड़ा होता तो फौरन अदालत जमती, फौरन समन जारी किए जाते, गवाही ली जाती, बैनेफिट आव् डाउट् दिया जाता और उचित ढंग से सजा सुनाई जाती। धीरे-धीरे यार लोग इस कार्यवाही में आनन्द लेने लगे। यदि कभी हम लोग उनसे कहते कि यार पवनकुमार, कभी हम जीवन में कहीं फँस जाएँ तो बचा देना; तो वे बड़ी गम्भीरता से काली टाई ठीक करते हुए कहते—"वल, यह सब मामले पर निर्भर है। न्याय के सामने दोस्ती, दुश्मनी और रिश्तेदारी कोई मायने नहीं रखती। मुझे अफ़सोस के साथ कहना पड़ता है कि अगर आपको वाट्सन वर्सेज़ किंग वाला केस मालूम होता तो आप कभी ऐसा लचर सवाल मुझसे नहीं करते। उस केस में वाटसन का प्रतिरोधी वकील स्वयं उसका लड़का था। अरे आप अशर्फीलाल एण्ड संस वर्सेज बनारस म्युनिसपैलिटी वाला केस ही उठा लीजिए जो कि कल आनरेबुल हाईकोर्ट आव् जूडीकेचर इलाहाबाद से तय हुआ है। खन्ना साहब ने वकालत की. . .

और तब तक हम लोग खिसकने लगते। दूर पहुँचने पर भी उनकी बातें कानों में पड़ती रहतीं और वे सेक्शन के बाद सेक्शन, जजमेंट के बाद जजमेंट उद्धृत करते जाते।

२

मैंने इम्तहानों के बाद होस्टल छोड़ दिया। एक समाचार-पत्र में सहायक संपादकी मिल गई और रोजी चलने लगी। एक दिन एक कार्ड आया; छात्रावास में सालाना जलसा था—उसका निमंत्रण था। कार्ड पर लिखी बातों से पता चलता था कि सारा कार्य श्री पवनकुमार जी की दूरदर्शिता के तत्वावधान ही में संपन्न हुआ है। कार्ड पर सारा प्रोग्राम लिखने के बाद कुछ कानूनी शर्तें दी गईं थीं :—

(१) उत्सव का समय व स्थान बिना किसी नोटिस के बदला जा सकता है। इन परिवर्तनों के कारण किसी भी आमंत्रित व्यक्ति को हरजाना माँगने का हक़ न होगा।

(२) यदि अतिथि लोग अपनी छड़ी, कुत्ता या बच्चे लावेंगे तो उनकी सुरक्षा की जिम्मेदारी उनकी स्वयं की होगी। किसी चोट या हानि के लिए छात्रावास उत्तरदायी न होगा।

मुझे बड़ी हँसी आई। जलसे में शरीक हुआ। पवनकुमार जी ने पहिचाना, चश्मा उतार कर बड़ी संजीदगी से हाथ मिलाया। मैंने यूँ ही बताया कि इधर कुछ आर्थिक कठिनाइयों में पड़ा रहा और इसी कारण न आ सका। मेरे संपादक जी व उनकी धर्मपत्नी में झगड़ा रहता है और तनख्वाह मेरी रुकती है। इस बात का होठों से निकलना ही था कि उन्होंने हाथ नचाकर फ़रमाया, "वेल मि० त्यागी, इट् इज नन आव् माई बिजनेस। वैसे मैं एक वकील के नाते आपसे कह सकता हूँ कि यदि आपकी तनख्वाह नहीं मिली तो उसके पाने का इज्जतदार रास्ता एक ही है और वह है कानून का रास्ता। आसानी से आप उन पर दावा कर सकते हैं। जज खफ़ीफा आपकी मदद करेगा। और संपादक जी से कहिए भी कि रोज के झगड़े से क्या फ़ायदा; अब तो नया कानून आ गया है, वे तलाक की कोशिश क्यों नहीं करते? मैं तो आप दोनों के केस हाथ में ले लेता पर मजबूर हूँ, प्रेक्टिस की इजाजत अभी नहीं मिली।" और इसके बाद वे तेजी से अन्य मेधों की ओर

चले गये। ऐसा लगा कि कोई सेक्शन या टार्ट खो गया है और उसे ढूंढ रहे हैं।

३

वक्त गुजरता गया। सिनेमे में अगर दस साल का अरसा गुजारना हो तो निर्देशक को काफ़ी कठिनाई उठानी पड़ती है। खेत पकाये जाते हैं—नई फस्लें दिखाई जाती हैं—कलैंडर के पन्ने व घड़ी की सुइयाँ घुमाई जाती हैं। मगर कहानी में ऐसा नहीं होता। मैंने कहा कि दस साल गुजर गये और आपने मान लिया; न गवाह की जरूरत पड़ी और न सबूत की। मैं अपनी जिंदगी में खो गया और पवन कुमार जी का कोई खास खयाल नहीं रहा। इस बीच में कभी-कभी दोस्तों से उनकी बातें सुनता रहता। कोई कहता कि वे अब बड़े सलीके के सुलझे हुए आदमी हो गये हैं और अब बहकी-बहकी बातें नहीं करते। कुछ कहते कि अब वे पहिले से भी ज्यादा सनकी हो गये हैं। उनकी बीवी-बच्चे नातेदार सब उनके कानून से तंग हैं। सिवाय कानून के और कोई शौक और दिल्लगी ही नहीं रही! यह समझिए कि नाश्ते में थोड़ा सा एविडेंस ऐक्ट लेते हैं, दोपहर के खाने के साथ कुछ कांट्रेक्ट एक्ट और डिनर के साथ दो चार सेक्शन आई० पी० सी० यानी कि ताजीराते हिन्द के। मेहमानों की खातिर में इलायची के साथ विधान के आर्टीकिल पेश किए जाते हैं वगैरा-वगैरा। अदालत में भी कोई खास इज्जत नहीं है। प्रतिपक्षी वकील उन्हें देखकर हाकिम के सामने ही हँसते रहते हैं। खैर, मुझ पर इन बातों का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। हाँ, अलबत्ता यह जरूर तय किया कि उन्हें एक पत्र लिखा जाए। और एक इतवार को एक दस पैसे वाला लिफाफा मैंने उन्हें डाल ही जो दिया। पत्र साधारण था; कोई खास बात उसमें लिखी ही नहीं गई थी। शायद कुछ-कुछ इस तरह था:

प्रिय पवनकुमार जी,

बहुत अरसा गुजरा आप से मिले। कोई दस वर्ष हो गये जब हम

लोग प्रयाग राज में साथ-साथ थे। वैसे आपके बारे में समाचार मुझे मित्रों द्वारा मिलते रहते थे। आशा है आप सपरिवार कुशल पूर्वक होंगे। प्रेक्टिस ठीक चल रही होगी। परिवार भी खूब बढ़ गया होगा। बच्चों के बार में लिखिएगा।

मैं २१ ता० को शायद इटावा से गुजरूँ। हो सके तो कालका मेल पर आइएगा। दिन में गुजरती है। मिलकर खुशी होगी।

तुम्हारा .....

....

.....

मैं तो पत्र लिखकर भूल ही गया। कोई एक महीने बाद एक दिन एक रजिस्ट्री एकनालेजमेंट ड्यू पैकेट मेरे पास आया। डाकिए को रसीद दी और खोला। देखा तो पवनकुमार जी का पत्र था। सुविधा के लिए उसकी नकल मैं यहाँ छाप रहा हूँ। पत्र इस प्रकार था :

पवन कुमार गौड़ ३२।१५१ सिविल लाइन

एम० ए०, एल० टी०, एल० एस० जी० डी० इटावा

एल०-एल० बी०, प्लीडर (सिविल व फौजदारी) दिनांक ५-११-५८

इन्कम टैक्स के विशेषज्ञ

सेल्स टैक्स के विशेषज्ञ

गनेश चूड़ी कारखाने के कानूनी सलाहकार

पारिवारिक झगड़ों में परामर्शदाता

चेयरमैन, संस्कृत स्टडीज ट्रस्ट

भूतपूर्व चेयरमैन डिस्ट्रिक्ट बोर्ड

पत्र-संख्या आपसी १३।५८

विषय—कुशल इत्यादि—परिवार व स्वयं के बारे में

संदर्भ—आपका संख्याहीन पत्र दिनांक ५-९-५८

प्रिय त्यागी जी ,

आपका कृपा पत्र प्राप्त हुआ। पढ़कर बड़ी खुशी हुई। पत्र हाथों में लेते ही आपका चेहरा आँखों में उतर आया। आशा है आप भी कुशल पूर्वक होंगे।

२—आपने लिखा है कि हम लोगों को प्रयाग छोड़े दस वर्ष हो गये। क्षमा कीजिए, यह ठीक नहीं मालूम होता। मेरे विचार से साढ़े नौ वर्ष से अधिक नहीं हुआ। मेरी सेहत तो ठीक रहती ही नहीं। इस माह के स्वास्थ्य का विवरण इस पत्र के साथ लगे एक्ज़ीहिबिट 'ए' पर दिया है। प्रक्टिस खासी चल रही है। विशेष विवरण फिर कभी दूँगा।

३—बच्चे कई हैं। सुविधा के लिए विवरण एक्ज़ीहिबिट 'बी' में दे रहा हूँ।

४—२१ ता० को स्टेशन आने की कोशिश जरूर करूँगा। वैसे न आया तो कान्ट्रैक्ट की ब्रीच न समझिए। मैं जानता हूँ कि आप इस औपचारिकता को गैरजरूरी समझते हैं पर फिर भी एक वकील के नाते मैं पोजीशन साफ कर देना ही ठीक समझता हूँ।

अच्छा तो विदा,
लिखते रहिए
सदैव आपका
पवनकुमार

पुनश्च

१—आगामी पत्रों में इस पत्र का नम्बर व तिथि देने की कृपा करें।

२—क्षमा कीजिए, आप वही त्यागी जी हैं न जिन्होंने बी० ए० में संस्कृत आफर की थी? काफी समय गुजर जाने से कुछ स्मृति भ्रम-

सा हो रहा है। मेरे साथ एक त्यागी जी थे जो बड़े दिलचस्प आदमी थे। आप वहीं हैं न ?

परिशिष्ट 'अ'

विवरण—स्वास्थ्य का

माह अक्टूबर १९५८ ए डी

ता० १ से ११ तक	ज्वर	डा० उदयनारायण
११ से १२ की दुपहर	खाँसी	,, ,,
१२ की दुपहर से २८ की शाम	ठीक	कोई डाक्टर नहीं
२९ की रात से ३१ तक	ज्यादा ठीक	,, ,,

परिशिष्ट 'ब'

विवरण—बच्चों का

एक लड़का

नाम	रम्मू
पूरा नाम	रमेशचंद्र गौड़
कद	३ फुट ११ इञ्च
आयु	११ वर्ष ३ माह
रंग	साँवला

लड़की नं० १

नाम	रमा
पूरा नाम	रमा गौड़
कद	दो फिट
आयु	ठीक याद नहीं, अगले पत्र में लिखी जायगी
रंग	साँवला

लड़की नं० २

नाम	उमा

पूरा नाम	उमा गौड
कद	नापने नहीं देती
आयु	तीन माह
रंग	अभी तय नहीं; कुछ कहते हैं गोरा है, कुछ कहते हैं साँवला

इसके बाद एक पत्र आया। लड़की नं० १ की आयु लिखी थी। और साथ में डाक्टरी सार्टीफिकेट भी था। फिर एक पत्र आया जिसमें लिखा था कि लड़की नं २ का रंग आखीर में साँवला ही तय रहा।

मैंने तो फिर कभी चिट्ठी लिखने की हिम्मत की नहीं।

साहित्यकोश : नए अर्थ

साहित्यकोश : नए अर्थ

इधर हिन्दी-साहित्य में अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग होने लगा है। इन शब्दों का शास्त्रीय अर्थ तो एक ही है पर क्योंकि आम बोल-चाल में इनका प्रयोग एक से अधिक अर्थों में किया जाता है, सही अर्थ का ज्ञान न होने से कभी-कभी पूरा संदर्भ ही बिगड़ जाता है। साहित्य के गम्भीर विद्यार्थियों की सुविधा के लिए कुछ कठिन शब्दों के शास्त्र-सम्मत अर्थ नीचे लिखे जाते हैं :

छायावादी कविता

छायावादी कविता उस कविता को कहते हैं जो धूप में बैठ कर न लिखी गई हो।

नई कविता

नई कविता प्राय: उस कविता को कहते हैं जो नई अधिक व कविता कम होती है। इसका अर्थ समझ में कम ही आता है। यह नहीं कि अर्थ पाठक की समझ में नहीं आता—क्योंकि वह तो साधारणतया कवि व कविता दोनों के विषय में कुछ-न-कुछ निष्कर्ष निकाल ही लेता है—पर इसका अर्थ स्वयं कवि की समझ में भी कम ही आता है। इस कविता की एक विशेषता यह भी है कि यदि वह स्वयं आपकी लिखी हुई है तो वह हिन्दी-साहित्य की उपलब्धि है—कला का एक उत्कृष्ट नमूना है, और यदि किसी दूसरे की लिखी हुई है तो अस्पष्ट, संदिग्ध,

विदेशी कविता से प्रभावित व लादी हुई मन:स्थिति की द्योतक है।

नई कविता प्रयाग में ताजी मिलती है। और शहरों तक पहुँचते-पहुँचते उसकी ताज़गी कुछ कम हो जाती है।

खण्ड काव्य

खण्ड काव्य उस काव्य को कहते हैं जिसके अध्ययन से हृदय खण्ड-खण्ड हो जाए। कहते हैं इधर के कुछ खण्ड काव्य इस कसौटी पर पूरे उतरते हैं।

महाकाव्य

जो कवि सामान्य काव्य का सृजन करने में असमर्थ हैं, वे महाकाव्य लिखते हैं। कहते हैं अपेक्षाकृत इसका लिखना सरल है और उसके लिए कवि होना तो एकदम अनावश्यक है।

वीर रस

वीर रस वह रस है जो हाल ही में छपी किसी करुण रस प्रधान पुस्तक को पढ़कर उसके लेखक के प्रति आपके हृदय में उत्पन्न होता है।

साहित्य

साहित्य उस छपे हुए मैटर को कहते हैं जो साप्ताहिक दैनिक, व मासिक पत्रों में निरन्तर छपता व निरन्तर पढ़ा जाता है। इसकी निरन्तरता के कारण कभी-कभी इसे शाश्वत साहित्य के नाम से भी पुकारा जाता है।

सामयिक साहित्य

इस श्रेणी में वह साहित्य आता है जो कभी-कभी विशिष्ट अवसरों पर ही पढ़ा जाता है। रामायण, गुंजन व कामायनी इत्यादि ग्रन्थ इसी प्रकार के साहित्य में गिने जाते हैं।

लोक साहित्य

लोक साहित्य उस साहित्य को कहते हैं जिसे जनता आम तौर पर पढ़ती हो। दैनिक पत्र, रेलवे टाइम टेबुल, विज्ञापन वगैरा इसी शीर्षक के अन्तर्गत आते हैं।

संस्मरण

संस्मरण उन छोटी-छोटी असंबद्ध घटनाओं को कहते है जो किसी महान् व्यक्ति के मरने के बाद छोटे-छोटे आदमियों को याद आती हैं। इनके यथार्थवादी व प्रभावोत्पादक होने के लिए यह आवश्यक है कि उस व्यक्ति की कमजोरियां ही याद की जायें और इस तरह की जायें कि जिससे आपकी सहृदयता पर प्रकाश पड़े।

लेखक

लेखक उस व्यक्ति को कहते हैं जिसका नाम इन अक्षरों के नीचे पुस्तक के मुखपृष्ठ पर छपा हो। लेखक होने के लिए उस पुस्तक का लिखना जरूरी नहीं है।

सफल लेखक

सफल लेखक उस लेखक को कहते हैं जो फक्कड़ हालत में सड़कों पर घूमता हो, गालियाँ देता हो, नशा करता हो और अव्यवस्थित रूप से जीवन व्यतीत करता हो।

महान लेखक

जब कोई लेखक सफल लेखक की तरह जीवन यापन करने के बाद बिना दवा के मर जाता है तो उसे महान् लेखक की संज्ञा दी जाती है। यहां यह बात याद रखने की है कि प्रायः लेखक मरने के बाद ही महान् माने जाते हैं।

आलोचक

उस साहित्यिक को कहते हैं जो—

अ—स्वयं कोई मौलिक वस्तु लिखने में असमर्थ हो पर इस सत्य को स्वीकार करने के लिए तैयार न हो।

ब—यह बर्दाश्त न कर सके कि दूसरे लोग मौलिक चीजें लिखते रहें।

सत्समालोचक

लेखकों को नीचा दिखाने में जो आलोचक सफल रहते हैं उन्हें सत्समालोचक की संज्ञा दी जाती है। आलोचना की क्रिया संपादन करने में जब गाली-गलौज, मार-पीट की नौबत आ जाए तब भी उसे सत्समालोचना कहा जाता है।

महान् आलोचक

उस आलोचक को कहा जाता है जो अपनी आलोचनाओं से दस-पाँच प्रतिभावान् लेखकों और कवियों का लिखना-पढ़ना बंद करा सके।

प्रकाशक

प्रकाशक वह व्यक्ति है जो साहित्य में करुण रस को जीवित रखता है। लेखक को सदैव इस स्थिति में रखना कि वे करुण रस की सृष्टि करते रहें—उस बेचारे की जिम्मेदारी है। प्रायः प्रकाशक कर्तव्य-परायण होते हैं।

लोकमत

लोकमत उस प्रशंसात्मक सम्मति को कहते हैं जो आपके अंतरंग मित्रों ने आपकी नवीनतम कृति के बारे में प्रकट की है।

विज्ञापन

पंत जी के काव्य-ग्रन्थों की भूमिकाओं को विज्ञापन कहते हैं।

कवि-सम्मेलन

आदमी और औरतों की उस भीड़ का नाम है जो बड़े शहरों या मेलों में रात को किसी पंडाल के नीचे, किसी लाउड-स्पीकर के पास लगी होती है। पंडाल में रोशनी प्रायः गुल रखी जाती है ताकि कवि-सम्मेलन पूर्ण रूप से सफल हो सके। इनकी एक विशेषता यह है कि ये प्रायः बिना किसी कवि के ही जम जाते हैं। यदि कभी कोई कवि इन सम्मेलनों को असफल करने के लिए वहाँ पहुँच भी जाता है तो उसे श्रद्धापूर्वक निकाल दिया जाता है।

मौलिकता

मौलिक उस नकल की गई चीज का नाम है जिसका कि पता आसानी से न लग सके।

लेखकों की सुविधा के लिए मैं यहाँ बता दूँ कि यदि कभी इस प्रकार की चोरी (चोरी तो कृष्ण कन्हैया भी करते थे : प्रमाण—भागवत, सूरसागर और गीत गोविन्द इत्यादि) पकड़ी जाये तो ये तर्क दिए जा सकते हैं :

अ—जिस लेखक को आप इस कृति का श्रेय दे रहे हैं, उसने स्वयं एक और लेखक की चोरी की है।

इस तर्क से आपकी अध्ययनशीलता का पता लगेगा।

ब—यह भी संभव है कि दो व्यक्ति एक तरह ही बात सोच गये हों।

इस तर्क से मनुष्य जाति की संभावनाओं के प्रति आपकी आस्था का पता लगता है।

स—यह एकदम मौलिक वस्तु है और आप चोरी का झूठा इल्जाम

मुझ पर लगा रहे है । आज छोड़े देता हूँ—आइन्दा ऐसा न कीजिए ।

इससे आपके चरित्र की दृढ़ता प्रकट होती है ।

द—हाँ जी हम तो चोरी ही करते हैं । क्या करें विधाता ने बुद्धि ही नहीं दी !

इस तर्क से आपकी विनयशीलता प्रकट होती है ।

क—प्रिय बंधु, हमने तो यह प्लाट फलाँ साहब से सुना था । हमें क्या पता था कि किसी और का है ! . . . बड़ी भूल हुई. . . वत्स, इतने प्लाट हैं कि कैसे याद रहे कि इस पर कुछ लिखा जा चुका है या नहीं ।

इस तर्क से आपकी स्पष्टवादिता व मित्र प्रेम पर प्रकाश पड़ता है।

नोट—ऊपर लिखे शब्दों के अतिरिक्त यदि किसी और विशिष्ट शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में कोई भ्रम किसी पाठक को हो तो वह लेखक के साथ पत्र-व्यवहार कर सकता है ।

खुली धूप में नाव पर

खुली धूप में नाव पर

सान्याल साहब का कहना था कि अगर नाव पर सैर करनी हो तो दो बातें जरूर याद रखनी चाहिये। एक बात तो यह कि कभी दो साथी और एक कुत्ता लेकर नाव पर न चढ़ो। अगर कभी नाव पर तीन आदमी और एक कुत्ता होते हैं (कुत्ते का जिक्र करो या न करो) तो नाव पर जरूर मुसीबत आती है। यकीन न हो तो जरोम के जरोम की इसी नाम की पुस्तक पढ़ लीजिए। दूसरी बात जो वे बताते थे वह यह थी कि अगर नाव पर सफ़र करना हो तो वह धूप में करना चाहिए। रात को नाव चलाना खतरनाक है। जरा-सी गलती से 'नदी नाव संयोग' इस प्रकार हो सकता है कि हम सब के नाम पूरे विवरण के साथ अगले दिन दैनिक पत्रों में छपें। तेज हवा या बारिश में भी नाव चलाने में कोई खास मजा नहीं। बारिश में सबसे बड़ी इल्लत वे यह बताते थे कि इसमें कपड़े भीगने का खतरा रहता है।

इन्हीं कारणों को ध्यान में रखते हुए हम लोगों ने तय किया कि नाव की सैर दशहरे की छुट्टियों में की जाए। सान्याल साहब वर्मा जी, ठाकुर जंगबीर सिंह और मैं—चारों को यह बात जम गई और पन्द्रह दिन पहिले से ही प्रोग्राम बनने लगे और तैयारियाँ होने लगीं। सब्जियों और अचारों को लेकर काफ़ी बहस चली। इसके बाद नमक पर कुछ आंदोलन शुरू हुआ। सान्याल साहब नमक कम खाते हैं और ठाकुर साहब ज्यादा। सान्याल साहब कहने लगे कि ज्यादा नमक तो जानवर खाते हैं और इस पर ठाकुर साहब बोले कि उन्होंने सुना ही

नहीं कि क्या कहा जा रहा है। हाँ, अलबत्ता बात अगर उनके नमक खाने से कोई सम्बन्ध रखती है तो वे सिर्फ इतना अर्ज करना चाहते हैं कि वे नमक अपना खाते हैं, किसी दूसरे का नहीं। वर्मा जी ने कहा था सही बात है—अपने पैसे पर कोई ऐश करे तो क्या हर्ज? बस जरा इससे नमक का भाव बाजार में नहीं बढ़ना चाहिए। नमक का आंदोलन खत्म हुआ तो फिर कुछ और बात उलझ गई। कुत्ता साथ ले चलें या नहीं—हमने पूछा। हमारे दोस्तों ने हमसे कहा कि क्योंकि हम खुद ही जा रहे हैं, किसी और जानवर की कोई खास जरूरत नहीं मालूम होती। हाँ, अलबत्ता अगर हमें उसके बिना अकेलापन महसूस होता हो, तो हम उसे जरूर ले जा सकते हैं और इस पर किसी को आपत्ति नहीं है। मैंने कहा कि ठीक है; मैं कुत्ते से पूछ लूँ कि वह आप लोगों के साथ चलने को राजी है या नहीं और अगर उसे एतराज नहीं हुआ तो हम उसे जरूर ले चलेंगे।

२

दशहरे के अगले दिन हम चारों लोग सुबह-ही-सुबह घर से निकल पड़े। कुत्ता साथ नहीं गया। हम लोगों ने रिक्शे किए। खाने का सामान एक थैले में रक्खा और नहाने के कपड़े एक कंडों में डाले। इसके बाद एक-एक रिक्शे में दो-दो के हिसाब से हम लोग बैठ गए।

रास्ते में कोई खास बात नहीं हुई। हमने कहा कि देखो हम लोग वक्त के कितने पाबन्द हैं जो एकदम ठीक वक्त पर एक जगह इकट्ठे हो गए। इस पर सान्याल साहब ने कहा कि हम लोगों को और काम ही क्या है? ठाकुर साहब ने कहा कि ठीक वक्त पर काम करना नौकरों की आदत होती है। वे खुद तो ठीक वक्त पर सिर्फ़ यह देखने आये थे कि बाकी लोग वक्त पर आते हैं या नहीं। कुछ दूर जाने पर एक रिक्शे की चेन उतर गई। थोड़ी दूर जाने पर दूसरे रिक्शे में हवा भरवानी पड़ी। इतने समय रिक्शा रुका रहा, वर्मा जी उसकी घंटी बजाते रहे।

पास के चौराहे का पुलिसमैन घूर-घूर कर हम लोगों को देखता रहा और ठाकुर साहब बराबर कहते रहे कि आज उनकी तबीयत किसी पुलिसमैन को पीटने को कर रही है।

नदी से कोई एक मील की दूरी पर ही नाव वालों ने हमें पकड़ लिया। एक को मना किया, दो को मना किया पर वहाँ तो कितने ही नाव वाले थे। नाव तो हमें लेनी थी मगर सान्याल साहब कहते थे कि नाव किनारे पर लेंगे। यहाँ नाव करने से पैसे ज्यादा लगेंगे। हम लोगों ने हाँ-में-हाँ भरी। वैसे पैसे अगर सिर्फ सान्याल को ही देने होते तो हम नाव जरूर यहीं करते।

खैर, दो-चार नाव वालों को मना कर दिया और वे मान भी गए। मगर शायद नाव वालों का एक ऐसा तबका भी होता है जो किसी की बात नहीं मानता। ऐसे लोगों को पहिले सान्याल साहब ने समझाया। इसके बाद वर्मा जी बोले कि वे लोग अगर सान्याल साहब पर यकीन नहीं करते तो उन पर करें। वे भी यही बात कहते हैं कि हमें नाव नहीं लेनी। ठाकुर साहब बोले कि रिक्शे आगे बढ़ें और इन लोगों से किसी तरह की बात करना जरूरी नहीं है। बस इतना कहना था कि रिक्शे चलने लगे। मगर ऐसा लगा कि एक-दो मल्लाह रिक्शे के ही पीछे भाग रहे हैं। ठाकुर साहब को बुरा लगा। उन्होंने रिक्शा रुकवाया और बोले कि भागने से कोई फायदा नहीं, हमें दर असल नाव लेनी ही नहीं। इसके बाद हम लोग आगे बढ़े। मल्लाह लोग फिर भी भागते रहे। इस बार ठाकुर साहब रिक्शा रुकवा कर उतरे और उन्हें समझाने लगे कि ज्यादा भागने से फेफड़ों पर बुरा असर पड़ता है। खरगोश को देखो, दिन-रात भागता रहता है और इसी वजह से इतनी जल्दी मर जाता है। कोई खरगोश देखा है कभी सौ साल का? हाथी को देखो, कितने दिन जिन्दा रहता है; क्योंकि वह धीरे-धीरे चलता है। वर्मा जी ने कहा कि उन्होंने एक ऐसा हाथी भी देखा है जो सोते हुए कतई नहीं चलता था। सान्याल साहब ने

मल्लाहों से कहा कि अगर खरगोश देखने हों तो चिड़ियाघर में हैं।

हमने बात निबटाते हुए कहा कि इन्हें समझाने से कोई फायदा नहीं। इन्हें पीछे दौड़ने दीजिए, इससे हमारा कुछ नहीं बिगड़ता। सान्याल ने भी कहा, "हाँ ठीक है। इनके पीछे भागने से भला हमारा बिगड़ता ही क्या है। ये लोग भागें और खूब भागें।" और इसके बाद वे बड़े अंदाज से उन लोगों को देखने लगे गोया कि रेस में हिस्सा लेने वालों के नाम नोट करने वाले हों। ठाकुर साहब ने कहा, "वाह, हम कोई चोर या उचक्के हैं जो हमारे पीछे लोग भागें?" वर्मा जी ने भी यही कहा कि हम लोग चोर-उचक्के नहीं हैं और हमारे पीछे भागने का किसी को हक़ नहीं है। उन्होंने मल्लाहों को यह भी सलाह दी कि अगर भागने का उन्हें इतना शौक है तो वे किसी चोर या उचक्के का पता लगा लें और फिर उसके पीछे भागना शुरू कर दें।

जैसे ही बात खत्म हुई, रिक्शे चलने के लिए आगे बढ़े। थोड़ी दूर चल कर देखा कि कुछ मल्लाह अभी भी हमारे पीछे दौड़ रहे हैं। ठाकुर साहब का चेहरा लाल हो गया। रिक्शा रुकवाया और एक छोटे साइज के मल्लाह को उठाया और फेंक दिया। दूसरे मल्लाह लोग पास नहीं आए। इसके बाद हम सबको गालियाँ देते हुए ठाकुर साहब बोले कि मैं देखता हूँ, तुम लोग कैसे नाव में बैठते हो। इनकी नाव में बैठने से तो डूब मरना अच्छा। हम लोग चुप हो गए। थोड़ी देर बाद वर्मा जी ने कहा कि डूबने का इरादा अगर सच्चा हो तो नाव में बैठने से अच्छा और कोई रास्ता नहीं। इस पर ठाकुर साहब ने हम लोगों को खूब डाँट पिलाई और हम लोग इतना ज्यादा डर गए कि हँसने लगे।

३

रिक्शा हमने चौराहे पर छोड़ दिया। यहाँ से आगे ढाल के नीचे नदी थी। नाव वाले अभी भी पीछे-पीछे चल रहे थे। ठाकुर साहब

के प्रण के अनुसार हमने नदी तक पैदल जाने का निश्चय कर ही लिया था। हम लोग धीरे-धीरे उस स्थान पर पहुँचे जहाँ कि आम जनता के विश्वास के अनुसार कभी नदी बहती थी। ऐसा लगता था कि बहने का काम तो काफ़ी दिनों पहिले ही बन्द हो चुका था क्योंकि वहाँ कुछ रेत, कुछ कछार के खेत और कुछ कटान के अतिरिक्त और कुछ न था। मल्लाहों ने बताया कि नदी का बहाव इस वर्ष कुछ बदल गया है और वह यहाँ से कोई दो मील पीछे हट गई है। यह दूरी हर एक इंसान को पैदल पार करनी होती है। आगे दल-दल भी है। मगर इस निराशा-जनक स्थिति का एक और पहलू भी है और वह यह कि अगर हम लोग कुछ दूर हट कर घाट पर चलें तो वहाँ नाव मिल सकती है। वैसे घाट पर पानी उथला और गंदा है।

वर्मा जी ने कहा कि नाव वाले ऐसी ही झूठी बातों से भोली जनता को बहकाते हैं। तुलसीदास की रामायण में भी कुछ ऐसा ही प्रसंग है जहाँ कि एक केवट की प्यारी बातें सुनकर रामचन्द्र जी नाव पर बैठ जाते हैं। वर्मा जी की बात हम लोगों को पसन्द आई और हम लोग अपना सामान उठाकर धीरे-धीरे चलने लगे। धूप तेज थी और थोड़ी दूर चलने पर पसीना आ गया। कपड़े उतारे जाने लगे और सान्याल ने हवा और सूरज के झगड़े वाली कहानी एक बार फिर सुनानी शुरू की।

राम-राम करके हम लोग कोई डेढ़ मील चले ही होंगे कि एक आदमी मिला और उसने कहा कि आगे दलदल है और फँसने का अंदेशा है। उसने बगैर हमारे माँगे पिछले एक हफ्ते की रिपोर्ट भी हमें दी जिससे कि साफ़ जाहिर होता था कि दलदल में फँसने के लिए अक्सर दिहात से आदमी और औरत वहीं आते हैं। हम लोगों ने उसकी बात पर विश्वास करना प्रारंभ किया ही था कि वह बोला कि अगर नहाने के लिए हम लोग आए हों तो उसकी नाव घाट पर तैयार मिलेगी। सहायता की इस बात को सुनकर ठाकुर साहब ने मल्लाह के माँ-बाप

में काफ़ी दिलचस्पी लेनी शुरू की। गालियाँ सुन कर मल्लाह हम लोगों से हट गया।

अब हम लोगों ने दृढ़ निश्चय होकर बढ़ना शुरू किया। यह भी तय कर लिया कि अब किसी से कुछ नहीं पूछेंगे। कुछ ही दूर चले होंगे कि एक सज्जन मिले जो ऊपर से तो कोई ग्रामीण नेता या दिहाती स्कूल के अध्यापक लगते थे (क्योंकि उन्होंने खद्दर का कुर्त्ता पहिन रक्खा था, सर पर गांधी कैप लगा रक्खी थी और हाथ में गांधी-आश्रम का झोला ले रक्खा था) और नीचे से जो किसी सर्कस के जोकर लगते थे (क्योंकि उनकी धोती, जूते और कुर्ते का पिछला हिस्सा मिट्टी में सने थे)। ठाकुर साहब ने पूछा कि क्या आगे दलदल है ? इतना कहना था कि ये सज्जन निहायत अफ़सोस के साथ बतलाने लगे कि अगर हमें दलदल की तलाश है तो नदी के उस पार जाना पड़ेगा क्योंकि इधर तो रेत और पानी के अलावा और कुछ नहीं है। हम लोगों ने प्रसन्नता-पूर्वक उन्हें धन्यवाद दिया और पूछा कि उनके कपड़े कैसे मिट्टी में सने ? इस पर उन्होंने बड़े संतोप से बताया कि वे फिसल गए थे—किनारे पर—और इसके अलावा और कोई बात नहीं है। वर्मा जी ने उनसे हाथ मिलाया। कीचड़ लग जाने से हाथ गंदा हो गया और वह उन्होंने मेरी पैंट से पोंछ दिया। सान्याल साहब ने झोला खोला और उन्हें कुछ बिस्कुट खाने को दिए। ठाकुर साहब ने कहा कि आइन्दा वह ऐसी जगह फिसला करें जहाँ कीचड़ न हो। हमारी इन सब बातों से वे सज्जन बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कई बार हमें धन्यवाद दिया और चलते-चलते यह भी कहा कि उन्हें हमसे मिल कर इतनी खुशी हुई कि अगर वे इस वक्त एक जरूरी काम में न फँसे होते तो हमारे साथ नदी तक जरूर चलते।

कोई दो फर्लांग और चलने पर हमें कुछ लोग दिखाई दिए जो जमीन में से कुछ निकाल रहे थे। सान्याल साहब बताने लगे कि देश के इस भाग में खनिज पदार्थ बहुतायत से मिलते हैं और सम्भव है कि ये

लोग चाँदी या मैंगनीज निकाल रहे हों। कुछ दूर और चलने पर पता लगा कि वे लोग धरती में फँसे एक बैल को निकाल रहे थे। वहाँ जाकर हम लोग रुक गए।

उस स्थान पर एक बैल धरती में फँसा था और पाँच-छः आदमी उसे कीचड़ में घुस कर निकाल रहे थे। हमने पूछा कि यह क्या चीज है जिसमें बैल फँसा है क्योंकि वे झोले वाले सज्जन बता ही चुके थे कि दलदल तो इधर है ही नहीं। दिहातियों ने काम छोड़ कर बताया कि देशी भाषा में इसे दलदल कहते हैं। ठाकुर साहब ने कहा कि अभी कुछ देर पहिले उन्हें एक धोती-कुर्ते वाले सज्जन मिले थे। जो कहते थे कि इधर दलदल का नाम तक नहीं। इस पर वे दिहाती लोग बोले कि यह बैल उन्हीं धोती-कुर्ते वाले सज्जन का है। वे मदद के लिए कुछ आदमी लेने जा रहे थे—आप चार तन्दुरुस्त लोगों को इधर आते देखा तो मना नहीं किया ताकि आप यहाँ तक आएँ और बैल के निकालने में हाथ बटाएँ। वैसे वे सज्जन खुद भी मुश्किल से बचे हैं फँसते-फँसते।

इतना सुनना था कि ठाकुर जंगवीर सिंह को 'जंग' का मूड आ गया। वे ऊँचे स्वर में बोलने लगे जैसे कि पुराने जमाने में ऋषि लोग हिमालय पर ऋचाएँ पढ़ते थे। कहने लगे कि अगर किसी ने इस बैल को बचाने की कोशिश की तो वे उसे जान से मार देंगे। वर्मा जी ने कहा कि अब तो इस बैल के बचने का एक ही उपाय है और वह यह कि यहाँ से इसे छोड़कर पास के किसी डाकखाने से अमेरिका को तार कर दो। वे लोग इसे उधर से निकाल लेंगे। जमीन गोल है और जहाँ हम खड़े हैं इसके दूसरी तरफ जरूर अमरीका का कोई देश होगा। सान्याल साहब ने कहा कि बात ठीक है। इसी रास्ते के जरिये और मुल्कों में गाय वगैरा जानवर हिन्दुस्तान से पहुँचे हैं। ठाकुर साहब ने वर्मा व सान्याल को खुद भी उसी रास्ते अमेरिका जाने की सलाह दी पर हमने कहा कि अभी सारे जहाँ से अच्छे हमारे हिन्दुस्तान में बहुत

कुछ देखना बाकी है और विदेश जाने में जल्दी करने की कोई जरूरत नहीं है। दोनों दोस्तों ने काफ़ी समझाने के बाद हमारी बात मान ली।

४

इसके बाद हम लोग वापस लौटे। रास्ते भर ठाकुर साहब उस धोती-कुर्ते वाले सज्जन की तलाश करते रहे जिन्होंने हमें गलत सलाह दी थी। उन्होंने कई बार कहा कि जब उन्होंने सुबह बतलाया था कि उनकी तबीयत किसी पुलिसमैन को पीटने को कर रही है तो वह गलत था। दर असल उनकी तबीयत किसी धोती-कुर्ते वाले को पीटने को कर रही है। वर्मा जी ने कहा कि पीटना बेकार है, सिर्फ बिस्कुटों के पैसे वापस ले लेने चाहिए। मगर वे सज्जन थे कि कहीं दिखाई ही न दे रहे थे। हम लोग रिक्शे-ताँगों के अड्डे पर गए मगर वहाँ भी वे न मिले। एक साहब ने अलबत्ता यह सलाह दी जरूर कि शायद वे नाव से कहीं चले गए हों। फिर वह धीमे स्वर में बोला कि अगर नाव की तलाश हो तो उसकी अपनी नाव हाजिर है।

हम लोग अपने क्रोध को बिखेरना नहीं चाहते थे। काफ़ी सोच-विचार कर नावों के घाट पर गए मगर वहाँ भी वे सज्जन नहीं थे। मल्लाहों ने हमें घेर लिया और वही मल्लाह जिसे ठाकुर साहब ने उठा कर फेंका था, बड़ी प्यार की बातें करने लगा। ठाकुर साहब ने कहा कि वे तैर कर ही नदी को पार कर लेंगे और उधर जाकर झोले वाले महाशय को जरूर पकड़ेंगे। उन्होंने यह भी कहा कि अगर वे अपनी कोशिशों में असफल रहे तो हमें हक़ है कि हम उनका नाम बदल दें। हम लोगों ने शर्त मान ली और इस पर सान्याल ने दो-तीन नाम सुझाए भी। चूँकि वे नाम ठाकुर साहब को ठीक नहीं लगे, हम लोगों को नाव करनी पड़ी।

खुली धूप में नौका-विहार शुरू होने ही वाला था कि सान्याल ने पूछा कि धारा के बीच द्वीप तक जाने के कितने दाम लगेंगे मल्लाह ने कहा कि फ़ी सवारी एक रुपया लगेगा—आने-जाने का। इस पर

सन्याल ने कहा यह रेट तो जरा कुछ ज्यादा है और दो आने फी सवारी ठीक रहेगा। इस पर मल्लाह ने कहा कि सरकार, अड्डे पर रेट लिखे हैं आप मालूम कर लीजिए। हम लोगों ने हद्दर्जा मना किया पर सान्याल साहब न माने और चल ही दिए रेट देखने। जब वे जाने लगे तो ठाकुर साहब ने कहा कि जरा उन झोले वाले सज्जन का खयाल रखना।

कोई एक घंटे तक हम लोग सान्याल साहब की प्रतीक्षा करते रहे। तब तक वर्मा जी हमको सिनेमा के कोई बीस गाने सुना चुके थे। जैसे ही उन्होंने, "बड़ी देर की मेहरबाँ आते-आते" वाली गज़ल सुनानी शुरू की, सान्याल साहब आते दिखाई पड़े। वे बोले कि अड्डे पर नाव के रेट नहीं लिखे हैं, सिर्फ़ मुर्दा जलाने के रेट लिखे हैं।

उनकी बात सुन कर मल्लाह लोग हँसने लगे। आठ-आठ आने पर सवारियाँ तय हो गई। हम लोग बैठ गए और नाव चलने लगी। बैठते-बैठते सान्याल ने कहा कि अगर रेट इतने ज्यादा हैं तो पढ़े-लिखे नवयुवक नाव क्यों नहीं चलाते?

रास्ते में कोई विशेष बात नहीं हुई। कुछ नावें मिलीं पर वे झोले वाले सज्जन कहीं दिखाई नहीं पड़े। कोई बीस मिनट बाद हम लोग द्वीप पर पहुँच गए। कुछ देर किनारे पर घूमने के बाद नहाने की तैयारियाँ शुरू हो गईं। ठाकुर साहब ने तैरने का प्रोग्राम बनाया। मैं और वर्मा जी रेत में घरौंदे बनाते रहे और पाल वाली नावों को देखते रहे जो पंख खोले तैरती हुई परियों-सी लगती थीं। कुछ देर बाद हम सब लोगों ने नहाने के लिए कपड़े उतारने शुरू किए कि तभी सान्याल ने बताया कि नाव पर सामान नहीं है। इस पर ठाकुर साहब को बड़ी झल्लाहट छूटी। मल्लाह भी तब तक मछलियाँ पकड़ने कहीं चला गया था।

हम लोगों ने एक-दूसरे की बातें सुनीं और चुप हो गए। सान्याल बोले कि वे तो रेट देखने गए थे, उनको सामान का क्या पता? वर्मा जी ने कहा कि वे तो गाने सुना रहे थे, भला गाने और सामान में क्या

रिश्ता ? ठाकुर साहब कह रहे थे कि अगर हम लोग गाना न सुनते रहते तो सामान कभी भी न खोया जाता। फिल्मी गाने इसी कारण तो सेंसर बोर्ड मुश्किल से पास करता है—सान्याल साहब ने हम लोगों को बताया।

इस वक्त तक कोई एक बज गया था। नहाने और खाने की इच्छा तीव्र होती जा रही थी और इसी वजह से ठाकुर साहब का गुस्सा बढ़ता जा रहा था। धीरे-धीरे और लोगों को भी गुस्सा आना शुरू हो गया। वर्मा जी ने कहा कि आप लोग नदी का साफ़ पानी पिएँ और भूख और क्रोध दोनों को शांत करें। इतना कहने के उपरांत उन्होंने डटकर पानी पिया और बोले कि उन्हें तो खाना खाने की जरूरत है नहीं। ठाकुर साहब बोले कि फ़िक्र मत करो, खाना है भी नहीं। इसके बाद उन्होंने भी कोई दो गैलन पानी पिया और बोले कि पानी से तो सिर्फ उनकी प्यास बुझी है, भूख बदस्तूर ज्यों-की-त्यों जारी है। काफ़ी देर खाँसने के बाद वर्मा जी ने बताया कि उनकी भूख बुझने का कारण यह था कि वे पानी के साथ कुछ शंख, घोंघे और मछलियाँ निगल गए थे। इस बात को सुन कर सान्याल को जो पानी पी रहा था, इतनी हँसी आई कि उसके नाक कान सब में पानी भर गया।

काफ़ी देर वहाँ बैठने के बाद हम लोग वापस हुए। रास्ते भर नाव में हम लोग खोए सामान के बारे में चर्चा करते रहे जिसे मल्लाह इस तरह सुनता रहा जैसे कि हमारी हानि पर उसे कोई मलाल ही न हो। हम लोग थोड़ी ही दूर गए होंगे कि एक नाव पर वे धोती कुर्ते वाले सज्जन आते दिखाई पड़े। झोला समेत हाथों को उठा कर उन्होंने हमारा विधिवत् अभिवादन किया और फिर मंद-मंद मुस्काने लगे। हम सभी को खूब गुस्सा आ रहा था। वर्मा जी ने कहा कि पकड़ो बदमाश को। नाव तेजी पर थी और विपरीत दिशा को जा रही थी। ठाकुर साहब ने कस कर एक जूता फेंक कर मारा। वर्मा जी ने खुशी में हथेलियाँ बजाईं। यह जूता पानी में गिर गया और फिर ठाकुर ने दूसरा जूता

फेंका। वह उन सज्जन की नाक पर लगा। वर्मा जी ने फिर से हथेलियाँ बजाईं। हम सब लोग भी दिल खोल कर हँसे। थोड़ी देर बाद वर्मा जी ने शोर मचाना शुरू किया कि ठाकुर साहब को उनके जूते फेंकने का कोई हक नहीं था। इस पर सान्याल ने धीरज बँधाते हुए कहा कि छोड़ो यार, जूतों की तुम्हें क्या कमी? हम चौराहे पर पहुँचते ही जितने चाहोगे दिलवा देंगे।

धीरे-धीरे नाव किनारे पर लगी। नाव के अंदर से मल्लाह ने सामान निकाल कर बाहर रख दिया। सामान के मिलने पर हम लोगों को और भी गुस्सा आया। मल्लाह को खूब डाँट पड़ी। ठाकुर साहब बोले कि चूँकि हम लोग अंग्रेज़ी में ही बातें करते रहे, इसकी समझ में ही न आया होगा कि हम लोग सामान ढूँढ रहे हैं। इस पर सान्याल ने कहा कि देख लिया अंग्रेजी न जानने का नतीजा। और इस पर भी लोग कहते हैं कि अंग्रेजी हटा दी जाए। हम लोगों ने उसकी सूझ पर दाद दी। नाव वाले का भुगतान किया और फिर एक घने छायादार वृक्ष के नीचे बैठ कर खाना खाया। पानी हम लोग पहिले ही पी चुके थे और इसलिए उसकी ज़रूरत नहीं महसूस हुई। इसके अलावा, नदी पीछे छूट गई थी और आस-पास पानी था भी नहीं।

खाना खाने के बाद दो बातें तय हुईं। एक तो ये कि आज के अनुभव के आधार पर सान्याल अंग्रेज़ी के पक्ष में संपादक के नाम पत्र लिखे और दूसरी बात यह कि कुल मिलाकर आज का ट्रिप बुरा नहीं रहा। हम लोगों ने यह भी तय किया कि दीवाली की छुट्टी में शिकार पर चलेंगे। ठाकुर साहब ने कहा कि इस बार कुत्ते को भी ले चलेंगे। अगर आज हमारे साथ कुत्ता होता तो वे झोले वाले सज्जन ज़रूर पकड़े जाते।

जीवन : एक परीक्षा

जीवन : एक परीक्षा

हमारे प्राचीन शास्त्रों के अनुसार जीवन एक परीक्षा है जिसमें सफल होना कोई सरल काम नहीं। मेरे विचार में, इस परीक्षा को पास करने के अनेक ढंग विभिन्न युगों में प्रचलित रहे हैं। उदाहरण के लिए उपनिषद्काल में उन्हीं लोगों को जीवन में सफल माना जाता था जो नंगी तलवार की धार पर चल सकते थे। इस प्रणाली का वर्णन स्थान-स्थान पर 'असिधारा व्रत मिदम्' कह कर किया गया है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ इन प्रणालियों का भी विकास होता गया। द्वापर युग मे, इस परीक्षा के पास करने के लिए यह आवश्यक माना जाता था कि परीक्षार्थी का शरीर शस्त्रों से छेदा जाए और आग से जलाया जाए। यदि वह इन प्रैक्टिकल परीक्षाओं के बाद जीवित रह जाता था तो वह जीवन में सफल माना जाता था। तत्कालीन राजकीय नियमों के अनुसार उसके प्रमाण-पत्र में राजपुरुष लिखते थे—नैनं छिदंति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः . . . इस तरह की बातों की उस समय की पुस्तकों में काफ़ी चर्चा की गई है।

बीसवीं शती में जीवन की परीक्षा पास करने का ढंग काफ़ी बदल गया है। पन्द्रह वर्ष की आयु तक जीवन की परीक्षा को मिडिल स्कूल की परीक्षा के रूप में पास किया जाता है। बीस वर्ष की आयु तक हाई स्कूल की परीक्षा और पचीस वर्ष की आयु तक उच्च शिक्षा, जीवन की परीक्षा का स्थान लेती है। यह आम मत है कि जो व्यक्ति जितना भी स्कूल व कालेजों की परीक्षाओं में सफल होता है, उतना ही वह जीवन

में सफल माना जाता है। इन परीक्षाओं के बाद आई० ए० एस०, पी० सी० एस, नायब तहसीलदार इत्यादि परीक्षाओं का नम्बर आता है। जो विद्यार्थी इन परीक्षाओं के अंगूरों को खट्टा समझते हैं वे एल० टी०, एल० एल० बी० या पी० एच० डी० इत्यादि परीक्षाएँ पास करते हैं। इनके पास करते-करते मनुष्य की आयु प्रायः तीस या पैंतीस वर्ष की हो जाती है। इसके बाद महकमों की परीक्षाओं का नम्बर आता है जो हमेशा चलती रहती हैं। इस तरह की परीक्षाओं के बाद भी जीवन का पाठ्यक्रम कुछ शेष रह जाता है और कुछ परीक्षाएँ तो जीवन भर चलती रहती हैं जैसे कानूनी परीक्षा, डाक्टरी परीक्षा और किसी-किसी स्थिति में शव-परीक्षा।

यूँ तो सारी परीक्षाएँ अपनी-अपनी जगह पर महत्वपूर्ण हैं पर फिर भी स्कूल व कालेज में होने वाली परीक्षाएँ ज्यादा अहमियत रखती हैं। कानूनी, डाक्टरी या शव-परीक्षा में शायद ही कोई असफल रहता हो, नहीं तो सभी को क्रमशः अपराधी, बीमार व मुर्दा घोषित कर ही दिया जाता है। हाँ अलबत्ता, स्कूल व कालेज की परीक्षाओं में लोग प्रायः फेल होते रहते हैं। इस असफलता का प्रमुख कारण यह है कि छात्र लोग परीक्षाओं में दिए गए प्रश्नों का उत्तर ठीक तरह देने की विधि नहीं जानते। विद्यार्थियों की इस कठिनाई को दूर करने के लिए इस दिशा में देश में प्रचलित सारी पद्धतियों का संक्षिप्त वैज्ञानिक विवरण नीचे दिया जाता है।

सूत्र-पद्धति

यह पद्धति आर्य सभ्यता व संस्कृति के अनुकूल है। इस पद्धति का अभिप्राय है प्रश्न का कम-से-कम शब्दों में उत्तर देना। यह एक आम बात है कि कुछ लोग जितना ज्यादा लिखते हैं, उतनी ही ज्यादा गलतियाँ करते हैं। इस पद्धति के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं।

प्रश्न—नपोलियन कहाँ मरा ?

उत्तर—पृष्ठ १०५ पर।

या—

प्रश्न—अकबर का शासनकाल देश के इतिहास में स्वर्ण-युग समझा जाता है। इस विषय में अपने विचार प्रकट कीजिए।

उत्तर—हम इस उक्ति से सहमत हैं।

तर्क-पद्धति

इस पद्धति के अनुसार, बजाय एकदम उत्तर देने की धृष्टता करने के, परीक्षक से बात साफ़ कराई जाती है, तर्क किया जाता है और फिर उत्तर दिया जाता है। प्राय: परीक्षक विद्यार्थियों के तर्क का उत्तर कभी नहीं देते और इस प्रकार वह भी उनके प्रश्नों के उत्तर देने की जिम्मेदारी से बच जाता है। उदाहरण :

प्रश्न—हमारे देशवासियों के सामने मूल समस्या क्या है?

उत्तर—हमारे देशवासियों का मूल क्या है, यह बताइए। समस्या क्या है, यह हम बाद में बताएँगे।

सरल पद्धति

इस पद्धति के अनुसार प्रश्न का उत्तर ऐसी शैली में दिया जाता है कि परीक्षक को समझने में किसी प्रकार की कठिनाई न पड़े। ऐसे परीक्षकों की भी कमी नहीं है जो अपनी कापियाँ कुछ छात्रों द्वारा जँचवाते हैं और ऐसी स्थिति में सरल पद्धति का अनुसरण विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होता है। उदाहरण :

प्रश्न—हवा में वजन होता है या नहीं? प्रयोग करके बतलाओ।

उत्तर—राम ने श्याम से पूछा, "हवा में वजन होता है या नहीं?"

नोट—इस उत्तर से प्रकट होगा कि प्रश्न का कितनी आसानी से वाक्य में 'प्रयोग' हो गया। यही परीक्षक चाहता भी था। यदि कोई किताबी छात्र होता तो लिखता कि एक फुटबाल लीजिये, उसे तौलिये,

फिर उसे हवा भर कर तौलिये । वज़न में जो अन्तर है वह हवा के कारण है और इस प्रकार यह साबित हो गया कि हवा में वज़न होता है। इस प्रकार के उत्तरों पर विश्वास करने से पहिले यह ज़रूरी है कि परीक्षक महोदय एक फुटबाल और तराज़ू मँगाएं। इस प्रकार की कठिनाई से परीक्षक को क्रोध आ जाता है। अगर पचास कापियों के लिये वे इस तरह फुटकर सामग्री इकट्ठी करने लगें तो उन्हें भारत सरकार के सप्लाई विभाग की शरण लेनी पड़े। सरल पद्धति का अनुसरण करने से इस प्रकार की बाधाओं का प्रश्न ही नहीं उठता।

प्रत्यक्ष पद्धति

इस पद्धति के अनुसार प्रश्न का उत्तर प्रश्न की ही भाषा से निकाला जाता है और बाहरी ज्ञान की उसमें कोई ज़रूरत नही होती। उदाहरण:

प्रश्न—पानीपत की दूसरी लड़ाई के बारे में आप क्या जानते हैं ? संक्षेप में लिखो।

उत्तर—पानीपत की दूसरी लड़ाई पानीपत नामक एक स्थान पर लड़ी गई थी। कुछ लोगों का यह मत कि यह आगरा, बक्सर या प्लासी में लड़ी गई थी, गलत है। यह लड़ाई, जैसा कि नाम से ज़ाहिर है, पानीपत में लड़ी गई थी।

इस लड़ाई को दूसरी लड़ाई यूँ कहा जाता है क्योंकि इससे पहिले पानीपत में एक लड़ाई और लड़ी जा चुकी थी। उस लड़ाई को इतिहास में पानीपत की पहिली लड़ाई कहा जाता है।

या—

प्रश्न—मेंढक का शीतकाल से क्या सम्बन्ध है ? जाड़ों में वह क्या खाकर जीवित रहता है ?

उत्तर—मेंढक का शीतकाल से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जाड़ों की ऋतु में जब उसे कुछ भी खाने को नहीं मिलता, तो वह बेचारा शीतकाल को ही खाकर जिन्दा रहता है।

सार्वभौम पद्धति

इस पद्धति के अनुसार एक ऐसा सार्वभौमिक (Omnibus) उत्तर तैयार किया जाता है जो उस प्रकार के किसी भी प्रश्न के लिए दिया जा सके। उदाहरण के लिए, साहित्य के छात्रों से हर किस्म के कवि, लेखक या नाटककार के बारे में छोटी-छोटी टिप्पणी लिखने के लिए अक्सर कहा जाता है। अब आप ही सोचिए कि हर लेखक के गुण-दोष अलग हैं, भाषा अलग है और कहीं-कहीं तो किताबों के नाम तक अलग हैं। यदि ये सारी बातें विद्यार्थी याद करता रहे तो और विषय क्या खाक पढ़ेगा ? इस प्रकार के समस्त प्रश्नों का उत्तर एक टिम्पणी से भी दिया जा सकता है :

श्री। श्रीमती हिन्दी के प्रमुख कलाकारों में से हैं। आप उन व्यक्तियों में से हैं जिन्होंने अपने निरन्तर परिश्रम व प्रतिभा से भारती का मन्दिर समृद्ध किया है। यदि आप न होते तो हमारा साहित्य उस सीमा तक दरिद्र ही रहता।

आप जैसे प्रसिद्ध साहित्यिक की किताबों के नाम गिनाना अनावश्यक है क्योंकि उनसे सभी परिचित है। आपके गुणों की चर्चा करना सूर्य को दीपक दिखाना है—आपकी लोकप्रियता का कारण है आपकी कला। आपको भाषा पर पूरा अधिकार है, आपकी शैली चित्ताकर्षक है। संक्षेप में, आपकी कृतियों में वे सारे गुण विद्यमान हैं जो किसी लेखक को लोकप्रिय बनाते हैं।

जब तक हमारा साहित्य है, आपका नाम अमर है।

देखिए, इस टिप्पणी में लेखक का पूरा वर्णन भी हो गया और यह बताने की भी जरूरत नहीं पड़ी कि—

१. वह लेखक है या कवि या नाटककार;

२. जीवित है या मृत,

३. ब्रजभाषा लिखता है या अवधी या खड़ी बोली; तथा—

४. उसकी रचनाएँ कितनी और क्या हैं।

नि:स्वार्थ पद्धति

यह पद्धति वह है जिसका अनुसरण संस्कृत के प्राचीन साहित्य में खुले रूप से किया गया है। अनेक कवियों ने अपनी कृति का श्रेय दूसरे को दिया है और अपना नाम भी कहीं नहीं बताया। इस पद्धति के अनुसार, छात्र जो कुछ भी लिखता है, उसका श्रेय किसी कवि या लेखक को दिया जाता है। मुझे एक परीक्षार्थी की याद है जो हर प्रश्न के उत्तर में कहता था—कवि कहता है . . .। उसने अर्थशास्त्र के पत्र में बाजार की परिभाषा देते हुए कहा था—

कवि कहता है कि बाजार वह स्थान है जहाँ क्रेता व विक्रेता किसी वस्तु का क्रय व विक्रय करने एकत्रित होते हैं। आगे चलकर कवि फिर कहता है कि इसके लिये वस्तु की उपस्थिति आवश्यक नहीं। संक्षेप में कवि के कहने का यह अर्थ है कि वस्तु के बिना भी बाजार हो सकता है। . . .

मनोवैज्ञानिक पद्धति

इस पद्धति के अनुसार प्रश्न के उत्तर पर इतना ध्यान नहीं दिया जाता जितना कि परीक्षक के मनोविज्ञान पर। कापी में दो हाशिए छोड़ना, मोटे-मोटे अक्षर-चित्र बनाना, ज्यादा पर्चे भरना, रंगीन इंक का खुलकर प्रयोग करना इसी प्रणाली के अन्तर्गत आता है। मेरे मित्र उल्फतराय ने एफ० ए० की परीक्षा में एक प्रश्न तीन बार और दूसरा दो बार किया था। बात यह थी कि कुल मिला कर पाँच प्रश्नों का उत्तर देना था जिसमें से दो इन्हें याद थे। इन्होंने उसी सीमित सामग्री से समस्या को हल किया। बारी-बारी से उन्हीं दो प्रश्नों को लिखा—एक को तीन बार और दूसरे को दो बार। कुल मिलाकर पाँच प्रश्नों का उत्तर दिया गया। ऐसे परीक्षक भी होते हैं जो पर्चे गिन कर ही नम्बर दे देते हैं। अगर पाँच से ज्यादा सवाल करने पर नम्बर काटने की

धमकी प्रश्न-पत्र में न दी गई होती, तो मेरे स्नेही मित्र ज्यादा सवालों का जवाब भी लिख सकते थे।

ऐतिहासिक पद्धति

यह पद्धति सृष्टि के प्रथम दिन से चली आ रही है और सभ्यता व संस्कृति का सारा विकास इसी पद्धति के कारण हो पाया है। इस पद्धति का अर्थ है, दूसरों से सीखना, एक-दूसरे पर निर्भर होना, वक्त पर मदद लेना और मदद देना। यदि प्रत्येक व्यक्ति सारे काम स्वयं ही करने लगे तो जीवन व समाज का विकास हमेशा के लिए बन्द हो जाए। दुर्भाग्यवश, इस शाश्वत ऐतिहासिक सत्य को परीक्षा-भवन में नकल करना कहा जाता है। कहते हैं कि पहिले जमाने में नकल करना बहुत आसान था। नारायण पंडित ने पंचतंत्र की नकल करके हितोपदेश लिखा था। अठारहवीं शती में किसी ने कह दिया कि नकल को भी अकल चाहिए। बस, उसी दिन से नकल करना कठिन काम हो गया। क्योंकि परीक्षा में अकल का प्रयोग वर्जित है, नकल पर भी कानूनी पाबन्दी लगा दी गई है।

क्षमा कीजिए, यहाँ मुझे अपने एक और मित्र की याद आ रही है। इनका नाम था अलसाफ़। ये हजरत मैट्रिक की परीक्षा में नकल करने के लिए तवारीख की किताब ले गए थे। प्रश्न पढ़ा, किताब खोली और "तीसरा अध्याय—अकबर का शासन काल" से शुरू करके "पिछले वर्षों के प्रश्न व लेख का सारांश" तक पूरी नकल की। बीच में कुछ भी नहीं छोड़ा—यहाँ तक कि एक पृष्ठ पर लिखा था—अगले पृष्ठ पर अकबर का चित्र देखिए; इन्होंने वह भी हू-ब-हू लिख दिया। तस्वीर बेचारे नहीं बना पाए और इसका उन्हें कई दिन तक अफ़सोस रहा।

मौलिक पद्धति

जहाँ सारी पद्धतियाँ धोखा दे जाती हैं वहाँ यही पद्धति काम आती

है। इस पद्धति का मूल अभिप्राय है कि कापी खाली छोड़ने से कुछ-न-कुछ लिखना अच्छा है। बहुत-से परीक्षक पर्चे गिनने की परंपरा में विश्वास रखते हैं।

मेरे एक और दोस्त थे—हॉकी के फ़र्स्ट क्लास खिलाड़ी। इतिहास के पर्चे में पूछा गया कि अशोक के चरित्र पर एक नोट लिखो। ये सज्जन रात को ही हाकी का सेमिफाइनल खेल कर प्रतापगढ़ से आये थे। इतना तो उन्हें पता था कि अशोक का नाम कहीं सुना है पर कहाँ और किस संदर्भ में—यह ठीक तरह याद नहीं आ रहा था। खैर, कुछ सोचा, कुछ 'वीणावादिनी वर दे' का पाठ किया और फिर इस तरह अपनी लेखनी को वाणी दी :

अशोक एक सफल व्यक्ति था। उसका चरित्र बड़ा उज्ज्वल था। होस्टल में वह हमेशा खेल-कूद में हिस्सा लेता था और कक्षा में वह सदा प्रथम आता था। इसके अलावा वह डिबेटों में भी हिस्सा लेता था. . .

हाँ, वह बड़ा अहिंसक था। सिर्फ़ शेर का शिकार करता था, गिलहरी वगैरा छोटे-छोटे जानवरों को कतई नहीं मारता था. . .

हाल ही में उसका एक चित्र ए० वी० एम० ने बनाया है। इस चित्र में वह पद्मिनी के साथ काम कर रहा है। संगीत शंकर और जय-किशन का है, अन्य कलाकारों के नाम इस प्रकार हैं. . .

ग़लत नम्बर

ग़लत नम्बर

टेलीफ़ोन के जहाँ इतने फ़ायदे हैं, कुछ नुकसान भी हैं। जब आप किसी अंतरंग मित्र के फ़ोन की प्रतीक्षा में हों और कोई टाम डिक् या हैरी आपको तंग करने लगे तो बड़ा गुस्सा आता है। ठीक इसी तरह जब आपको किसी खास नम्बर की सख्त जरूरत हो और एक्सचेंज आपको गलत नम्बर दे दे—जो कि अक्सर ऐसे वक्त पर होता है—तब जो झल्लाहट होती है, उससे खुदा बचाए।

अभी परसों की बात है, मेरे पास एक टेलीफोन कहीं से आया। मेरा नम्बर है २६१७। मैंने टेलीफ़ोन उठाया ही था कि इन साहब ने बोलना शुरू कर दिया। क्या धारा प्रवाह भाषा थी—कुछ शब्द अंग्रेजी के. . . कुछ गुजराती के। बीच-बीच में गेहूँ, तिलहन व गुड़ का प्रयोग बार-बार किया जा रहा था—ठीक उसी प्रकार जैसे पंत जी की कविता में क्ष, र, ण, ल, अक्षरों का होता है। मैंने कई बार इन्हें बीच में रोकने की कोशिश भी की मगर कहाँ! ये हजरत तो बोलते ही चले जा रहे थे। बात कुछ शेयरों पर आ गई थी। टाटा एयर लाइन्स से लेकर मार्टिन बर्न तक की चर्चा की गई। ज़ाहिर था कि ये कोई दलाल थे और किसी दूसरे व्यापारी से बातें करना चाहते थे। अन्त में जब उनकी चाभी खत्म हुई तो मैंने कुछ साहस किया और नम्रतावश पूछा कि क्या मैं जान सकता हूँ कि आप किस टेलीफोन से बात करना चाहते हैं? वे बोले—क्या लचर बातें करते हो जी! क्या यह २६१८ नहीं है? मैंने धैर्य बँधाते हुए कहा कि कोई परवाह नहीं। सिर्फ़ एक गिनती

का फर्क है। यह २६१७ है। फिर कोशिश कीजिए—मेरी शुभ कामनायें आपके साथ हैं। बस फिर क्या था लगे। जनाब आतिशबाजी की तरह बिखरने. . . "कितने बदतमीज हैं आप। पहिले नहीं बताया। दूसरों के व्यापार की बात सुनते शर्म नहीं आती . . ." इस घटना से मन को काफी क्षोभ हुआ। ठीक इसी तरह एक और दफा टेलीफोन उठाते ही कुछ ताजी-ताजी गालियाँ सुनने को मिलीं। बाद में पता चला कि उन साहब को नम्बर गलत मिला था और उन गालियों पर कानूनी तौर से मेरा कोई हक नहीं था।

मेरठ में तो मेरी रोज ही की मुसीबत थी। मेरा जो नम्बर था वह टेलीफ़ोन एक्सचेंज के नम्बर से बहुत मिलता था। गर्ज यह कि दिन में लोग चार बार पूछते कि टाइम क्या है? आप अन्दाजा लगाइये कि रात को तीन बजे घर पर फ़ोन आये और आप नींद में बिस्तर से उठकर कम्बल लपेटे रिसीवर हाथ में लें और वह भी यह सोचते हुए कि पता नहीं कहाँ से ट्रंक-काल आ गया—दिल्ली में तो सब ठीक है या नहीं—शायद प्रेम का रिजल्ट आ गया. . . और उधर से बड़ी कोमल ध्वनि में कोई प्रश्न करे. . . टाइम प्लीज . . .

ऐसे वक्त जी में तो आता है कि कह दूँ कि दिन के ग्यारह बजे हैं। या यह वह वक्त है जब कि नारी-जाति को दिमाग़ का दौरा पड़ता है पर एक महिला के साथ ऐसा व्यवहार मेरे जैसा कुलीन, सुशिक्षित, सुसंस्कृत व्यक्ति नहीं कर सकता। गर्ज यह कि टाइम बतलाना ही पड़ता है।

एक दफ़ा बड़ा मजा आया। क्रिकेट का टेस्ट मैच चल रहा था मदरास में। छुट्टी का दिन था। घर पर-काल-काल आये. . . स्कोर प्लीज. . . । कुछ दफ़ा तो समझाने की कोशिश की, कुछ को स्कोर भी बताया पर जब स्थिति काबू से बाहर हो गई तो फिर न पूछिए क्या हुआ। एक साहब ने रिंग किया. . . निहायत साहबी ढंग से पूछा. . . "वेल, ह्वाट इज़ दी स्कोर. . . ?"

"आल आउट्" मैंने कहा।

"आल आउट् ?"

"आल आउट ! "

"यू मीन आल आउट् ?"

"यस, आई मीन आल आऊट !"

"ओह ! आल आउट् ।"

"यस, आल आउट् ।"

"वेरी बैड । पूअर शो. . . ."

"यस वेरी पूअर शो ।"

"ओ के मैन !"

"थैंक यू ब्वाय !"

तब तक वे रिसीवर रख चुके थे। आप अन्दाजा लगा सकते हैं कि ये खेल की खबर किस तरह दोस्तों को सुना रहे होंगे।

मुझे खुद कई बार ऐसा साबका पड़ा है कि गलत नम्बर मिला। आमतौर पर लोग नम्रतापूर्वक कह देते हैं कि यह नम्बर वह नहीं है जो आप चाहते हैं। इन्सान को जिन्दगी में सारी चीजें नहीं मिलतीं। मनुष्य का कर्त्तव्य कर्म करना है. . . .फल पर उसका अधिकार नहीं, इत्यादि-इत्यादि। कभी-कभी कुछ लोग जरूरत से ज्यादा सहानुभूति दिखाने लगते हैं। एक बार मैंने कोई नम्बर लिया। मैं जल्दी में था। बोला—"क्या डा० बद्री प्रसाद बोल रहे हैं ?"

"जी कौन ?"

"डॉ० बद्री प्रसाद ।"

"कौन डॉक्टर ?"

"बद्री प्रसाद ।"

"अच्छा मास्टर वंशी प्रसाद !"

"मास्टर नहीं, डाक्टर ।"

"अच्छा, मास्टर नहीं डॉक्टर. . ."

"वंशी नहीं, बद्री !"

"अच्छा, वंशी नहीं, बद्री।"

"उनके कंपाउंडर का नाम अख्तर है !"

"क्या कहा ? अफ़सर हैं ?"

"अफसर नहीं अख्तर !"

"ठीक, अलवर ! तो आप अलवर के डाक्टर बद्री प्रसाद बोल रहे हैं। जै राम जी की। यह गनेश फ्लोर मिल्स की अमीनाबाद ब्रांच है। कहिए क्या सेवा है ?"

मैंने धैर्यहीन होकर टेलीफोन रख दिया।

इसी तरह एक बार बड़े जरूरी काम से मिस्टर दास को फोन करना था। वे शायद घर पर नहीं थे और शायद उनके घर की कोई मिस साहबा अपने हीरो के फोन का इन्तजार कर रही थीं। फोन मिलते ही कोकिल-कण्ठविनिन्दित स्वर में बोलीं :

"ओह यू नाटी ब्वाय !"

"...जी मैं त्यागी बोल रहा हूँ..."

"हलो डार्लिंग ! जरा जोर से बोलो...क्या तीन महीने ही में हालत बदल गई...अरे मैं हूँ बिमला...

"देखिए, मैं एक सरकारी अफ़सर बोल रहा हूँ..."

"अरे तुम और अफसर ! ये मुँह और मसूर की दाल !"...

"यकीन कीजिए मैं अफसर हूँ..."

"क्या कहिए ! जरा एक बार फिर कहो ना ! हाय राम, ऐसी भी क्या संगदिली ! हमसे तो सीधे मुँह बातें ही न करोगे। अरे हमको दुआएँ दो कि तुम्हें कातिल बना दिया..."

इसके बाद कुछ और शेर और शायरी चलती रही। मैं मुस्कराता रहा और सुनता रहा। जी में तो आया चन्द एक अशार अर्ज कर दूँ उनकी खिदमत में.. .और खास तौर से वह शेर जिसकी वजह से हजरत नोमान को लखनऊ का अस्पताल रातोंरात छोड़ना पड़ा था :

तुम तो वो फूल हो
जिसमें खुशबू नहीं,
तुम मेरी जां
गोभी का फूल हो

...मगर बराबर के कमरे में कम्बख्त स्टेनोग्राफर बैठा था। चुप ही रहा।

आज तो कुछ लिखा जाए

आज तो कुछ लिखा जाय

आज तो मित्रवर, कुछ लिखा जाए !

ऐसा जी करता है कि सारी दुनियाँ की बातें आज ही लिख दूँ। ये चाँदी की रातें, ये सोने के दिन, वह हँसती हुई सुबह और ये शर्मीली शाम, ये सब-के-सब हमेशा के लिए अपने शब्दों में बाँध दूं! आज कुछ ऐसा लिखा जाए कि बस. . .सारी व्यथा, वेदना बरबस हो कर मेरी लिखी लाइनों की तीलियों में बँध कर बैठ जाये जिससे फिर काफ़ी दिनों तक कुछ लिखने की भावना मेरे और कामों में दखल न दे।

लिखने की इच्छा एक अजब बला है। पता नहीं और कला के प्रेमियों को कैसा अनुभव होता है पर लेखक को तो ऐसा लगता है कि जो भी नया अनुभव हो, जो भी नई पीड़ा हो, उसे दूसरों को दे। बाहर की सुन्दरता और आन्तरिक थकान. . .दोनों को कागज़ पर चित्रित कर आपके लिए जिल्दों में टाँग दें। वो चमकीली सुबह. . .वे रेल की पटरियाँ. . .वे मिल के भोंपू, चौराहे की भीड़ और रोज़ सुबह कालेज जाने वाली मुहल्ले की वह फैशन-परस्त लड़की. . .इन सब के बारे में (कुछ परिस्थितियों में आखिरी आइटम छोड़कर) आपको सब कुछ बता दें। एक ऐसा आवेश होता है जो रोके नहीं रुकता और ऐसा लगता है कि यदि कला का माध्यम न हो तो संवेदनशील व्यक्ति तो पागल ही हो जाए।

आत्माभिव्यक्ति के इस आवेश में न जाने कितनी रुकावटें हैं। आर्थिक कठिनाइयाँ, बीमारी, मेहमान, बीवी-बच्चे, बिजली वाला (जो सुबह से पाँच बार मीटर चेक करने आ चुका है.) और खुदा जाने क्या-क्या !

अक्सर ऐसा होता है कि कलम उठाई और सोचा कि कुछ शाश्वत साहित्य का सृजन किया जाय पर कमबख्त कागज़ ही नदारद। मैं कोई रामानुजम् तो हूँ नहीं जो बहियों के हाशिए पर लिखूँ। और फिर मेरे घर में बहियाँ भी नहीं हैं। धोबियों के कपड़ों की किताब अलबत्ता जरूर प्रयोग की जा सकती है पर यह डाकुमेंट आता है कनकरंट लिस्ट में यानी के जिस पर केन्द्र व राज्यों की तरह मैं व पत्नी दोनों का अधिकार है और नतीजा यह होता है कि जिस किसी को उसकी जरूरत होती है, वह न मिलने पर दूसरे को दोष देता है। एक साल में करीव बीस कापियाँ बनाई जाती हैं और वक्त पर एक भी नहीं मिलती। जब इन आवारा किताबों की कोई जरूरत नहीं होती तो सब-की-सब किसी दराज में पिकनिक मनाती नजर आती हैं। और हाँ, अगर कागज मिल जाये तो कलम नदारद और अगर लक्ष्मी व सरस्वती की भाँति दोनों का संयोग हो गया तो स्याही साफ़! या वो नहीं तो कोई मिलने वाले। गर्ज़ कहने का अभिप्राय यह है कि कला के मार्ग में जितने काँटे हैं उतने शायद प्रेम के मार्ग में भी नहीं। जिगर मुरादाबादी के शब्दों में इश्क एक आग का दरिया है और उसमें डूब कर जाना होता है। यदि यह सच है तो कला का मार्ग तो दावानल है—आग का समुद्र है—जिसमें स्पिरिट और पेट्रोल से जहाज चलाना पड़ता है।

इन घरेलू रुकावटों के अतिरिक्त कुछ और भी रुकावटें हैं जो कला के मार्ग में बाधा डालती हैं। इनमें से कुछ तो व्यक्तिगत हैं जैसे ए० जी० गार्डिनर की परेशानी कि लेख शुरू कैसे किया जाए और कालरिज की चिन्ता कि लेख समाप्त कैसे किया जाए। मेरे एक दोस्त हैं, जिन्हें एक और परेशानी का सामना होता है। वे प्रारम्भ और अन्त तो बड़ी संजीदगी और तपाक से करते हैं पर बीच की बाडी बनाने में लाचार हैं। खैर मुझे इस प्रकार की कोई परेशानी नहीं होती। जब तक लेख खत्म नहीं हो जाता, मैं तो उसे शुरू ही किए जाता हूँ।

इन टेकनीकल परेशानियों के अलावा कुछ प्रशासनिक परेशानियाँ भी हैं। संपादकों का सम्मिलित असहयोग. . .प्रकाशकों का विश्वास कि

आपकी आर्थिक कठिनाइयाँ ही आपके साहित्यिक विकास का मूल स्रोत हैं. . .अन्तरंग मित्रों की यह धारणा कि जो कुछ भी विदेशी साहित्य हम चोरी से पढ़ते हैं उसका हमारी शैली पर प्रभाव रह जाता है. . .इत्यादि-इत्यादि। फिर भी यह बात सच है कि परेशानियाँ इधर कुछ कम हो गई हैं। वुडहाउस के अनुसार जो वातावरण शेक्सपीयर के समय में था उसका तो अनुमान लगाना भी कठिन है। बेचारा गरीब आदमी किसी नौटंकी में काम करता था. . .उसके लिए ड्रामा लिखता था। मान लो, इतवार की रात को उसने मैकबेथ लिखा तो समझिए कि शुक्रवार तक की छुट्टी। शनिश्चर की सुबह ही थियेटर का मैनेजर भागा-भागा आएगा और बिस्तर पर से विलियम को उठाकर कहेगा". . .शेक्सपीयर! अरे ओ शेक्सपीयर . . .उठ भाई. . .देख अब सात बज रहे हैं. . .कुछ काम का भी ख्याल है या. . ."

"क्यों क्या बात है ?" शेक्सपीयर आँखें मलते हुए कहेगा।

"अरे भाई, वह ड्रामा तो जितना चलना था चल चुका। कल तक दूसरा चाहिए।"

"कल तक ?"

"हाँ भाई। कल न हो सके तो आज शाम तक. . ."

"हत्तेरे की. . .!" और शेक्सपीयर अपने कपड़े पहिनते और फिर मर्चेन्ट आफ वेनिस या जूलियस सीजर लिख कर देते। बेचारे को दाढ़ी बनाने तक का समय नहीं मिलता था और इसी से अब तक उसके चित्रों में बच्चों को दाढ़ी दिखाई जाती है। गरज यह कि उन दिनों साहित्य की सृष्टि दबाव में होती थी और आजकल ? एकदम फ्री लॉसिंग। आप चाय पीते हैं, नाश्ता करते हैं, किसी मिलने वाले को आटोग्राफ़ देते हैं और फिर लिखने बैठ जाते हैं। बिना किसी बाधा के यह क्रम जारी रहता है। यह अलग बात है कि कोई छोटी-मोटी चीज खलल डाल जाए जैसे कुत्ता नम्बर १ अन्दर आना चाहे और आप को किवाड़ खोलने पड़ें। फिर कुत्ता नम्बर २ अन्दर आना चाहे और आपको फिर उठना पड़े। फिर बिल्ली नम्बर १. . .

फिर बिल्ली नम्बर २ और फिर आपका कुत्ता नम्बर १ बाहर जाना चाहे। इसके कुछ मिनट बाद कुत्ता नम्बर २ भी बाहर जाना पसन्द करे और आप फिर उठें। बस, इन सब परेशानियों के अलावा, वैसे वातावरण शान्तिमय रहता है।

खैर, मैं कहाँ वुडहाउस का मजाक आपको सुनाने लगा। आज वक्त कम है और लिखना काफ़ी है। आज मैं वक्त बर्बाद नहीं कर सकता। वैसे भी बेकार की बातें करने की आदत मुझे कम ही है। मैं नहीं हूँ लाला जेठमल की तरह जो हर एक चलते जाते से भरपेट बातें करते थे। मुझे याद है एक दिन मैं उनकी दूकान पर बैठा था। एक सज्जन आये और पूछने लगे कि क्या आप बाबू ईश्वरदयाल को जानते हैं ?

"कौन ईश्वरदयाल ?" लाला जेठमल ने प्रश्न किया।

"बाबू ईश्वरदयाल।"

"क्या करते हैं ?"

"मुंसिफ हैं।"

"ईश्वरदयाल या ईश्वरकुमार ?"

"जी, दयाल।"

"हूँ ! क्या उमर होगी ?"

"कोई चालीस।"

"चालीस या साठ ?"

"जी चालीस..."

"हूँ...! रंग कैसा है ?"

"जी काला..."

"काला यानी कि साँवला जैसा कि उस मुन्नू का है ?...

"जी।"

"कब आये यहाँ ?"

"जी दो साल हुए।"

"अरे राम, दो साल से वे यहाँ है और हम नही जानते! क्या नाम बताया आपने ?"

"ईश्वरदयाल।"

"अच्छा——परमेश्वरदयाल। उनके बाप किताबों की दूकान करते थे ?"

"जी नही! इनके पिता तो वकील है"

"अच्छा-अच्छा, वकील ही सही। हमें कुछ पता नही जनाब, हम तो कारोबार में ही लगे रहते है। आप किसी और से पूछने का कष्ट करे।"

खैर, जैसा कि मैने बताया, मेरे पास आज वक्त कम है। आज तो कुछ लिखना है——बाते फिर करूँगा। आज तो लिखना है और कुछ ऐसा लिखना जो जमे और धर्मयुग के सम्पादक के अभिवादन सहित वापस न आये।